॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥
1349
श्रीरामचरितमानस
सुन्दरकाण्ड
सचित्र, सटीक, मोटा टाइप
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥ **1349**

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित

श्रीरामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड, सचित्र, सटीक

श्रीहनुमानचालीसासहित, मोटा टाइप

रामदरबार

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

श्रीरामचरितमानस एक प्रासादिक ग्रन्थ है। इस पवित्र ग्रन्थके पठन-पाठन और मननसे मनुष्यका सहज ही कल्याण होता है। इसका प्रत्येक दोहा, चौपाई, सोरठा तथा छन्द महामन्त्र है। सुन्दरकाण्डके संदर्भमें तो कहना ही क्या है? यद्यपि सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानस ही मनोहर है, किन्तु इसका सुन्दरकाण्ड अत्यन्त ही मनोहर है। जिस प्रकार महाभारतका विराटपर्व सर्वश्रेष्ठ अंश है, उसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें सुन्दरकाण्ड सर्वश्रेष्ठ अंश है। इसके श्रेष्ठताका कारण बताते हुए कहा गया है—'सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा। सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम्॥' अर्थात् सुन्दरकाण्डमें श्रीराम सुन्दर हैं, कथा सुन्दर है, सीता सुन्दर हैं। सुन्दरमें क्या सुन्दर नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें हनुमान्‌जीका पावन-चरित्र है जो भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष है।

एक बात निर्विवाद है कि सुन्दरकाण्डका श्रद्धालुजन अनुष्ठान करते है, जिससे उनकी प्रत्येक मनोकामना पूर्ण होती है। दूसरी बात सुन्दरकाण्डकी कथा, पात्रोंके स्वभाव और आचरण आदिमें आध्यात्मिकता तथा रहस्यात्मकताका मणिकाञ्चन-संयोग दिखायी पड़ता है।

सुन्दरकाण्डकी अनन्त विशेषताओंसे पाठकोंको परिचित करानेके उद्देश्यसे गीताप्रेससे इसके कई संस्करण प्रकाशित किये गये हैं। इस संस्करणमें पाठकोंको अनुष्ठानके रूपमें शुद्ध पाठ करनेकी सुविधा प्रदान करनेकी दृष्टिसे प्रारम्भमें श्रीजानकीनाथजीकी आरती और पारायण-विधि दी गयी है, जिससे पाठक आवाहन, न्यास तथा ध्यानके साथ शुद्ध पाठ कर सकें।

भक्तोंकी मान्यता है कि सुन्दरकाण्डके पाठकका प्रारम्भ किष्किन्धा-काण्डके दोहा संख्या-२९ से करना चाहिये। अतः सुन्दरकाण्डके पूर्व किष्किन्धाकाण्डका दोहा संख्या-२९ दिया गया है। अर्थसहित पाठ करनेकी विशेष महत्ता बतायी गयी है, इसलिये इसमें मूल पाठके साथ अर्थसहित सुन्दरकाण्ड और अन्तमें हनुमानचालीसा, संकटमोचन हनुमानाष्टक, रामायणजीकी आरती, हनुमान्‌जीकी आरती एवं श्रीरामस्तुति दी गयी है। इस संस्करणका टाइप भी मोटा रखा गया है, जिससे वयोवृद्ध पाठकोंको भी पाठ करनेमें सुविधा हो। आशा है, पाठकगण इसे अधिक-से-अधिक संख्यामें अपनाकर हमारा उत्साहवर्धन करेंगे।

—प्रकाशक

भगवान् श्रीजानकीनाथजीकी आरती

ॐ जय जानकिनाथा, हो प्रभु जय श्री रघुनाथा।
दोऊ कर जोड़े विनवौं, प्रभु मेरी सुनो बाता॥ ॐ॥

तुम रघुनाथ हमारे, प्राण पिता माता।
तुम हो सजन सँगाती, भक्ति मुक्ति दाता॥ ॐ॥

चौरासी प्रभु फन्द छुड़ावो, मेटो यम त्रासा।
निश दिन प्रभु मोहि राखो, अपने संग साथा॥ ॐ॥

सीताराम लक्ष्मण भरत शत्रुहन, संग चारौं भैया।
जगमग ज्योति विराजत, शोभा अति लहिया॥ ॐ॥

हनुमत नाद बजावत, नेवर ठुमकाता।
कंचन थाल आरती, करत कौशल्या माता॥ ॐ॥

किरिट मुकुट कर धनुष विराजत, शोभा अति भारी।
मनीराम दरशन कर, तुलसिदास दरशन कर, पल-पल बलिहारी॥ ॐ॥

जय जानकिनाथा, हो प्रभु जय श्री रघुनाथा।
हो प्रभु जय सीता माता, हो प्रभु जय लक्ष्मण भ्राता॥ ॐ॥

हो प्रभु जय चारौं भ्राता, हो प्रभु जय हनुमत दासा।
दोऊ कर जोड़े विनवौं, प्रभु मेरी सुनो बाता॥ ॐ॥

॥ श्रीहरिः ॥

पारायण-विधि

विधिपूर्वक पाठ करनेवाले महानुभावोंको पाठारम्भके पूर्व श्रीतुलसीदासजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीशिवजी तथा श्रीहनुमान्‌जीका आवाहन-पूजन करनेके पश्चात् तीनों भाइयोंसहित श्रीसीतारामजीका आवाहन, षोडशोपचार-पूजन और ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर पाठका आरम्भ करना चाहिये। सबके आवाहन, पूजन और ध्यानके मन्त्र क्रमशः नीचे लिखे जाते हैं—

अथ आवाहनमन्त्रः

तुलसीक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुचिव्रत।
नैर्ऋत्य उपविश्येदं पूजनं प्रतिगृह्यताम्॥ १॥
ॐ तुलसीदासाय नमः।

श्रीवाल्मीक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रद।
उत्तरपूर्वयोर्मध्ये तिष्ठ गृह्णीष्व मेऽर्चनम्॥ २॥
ॐ वाल्मीकाय नमः।

गौरीपते नमस्तुभ्यमिहागच्छ महेश्वर।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये तिष्ठ पूजां गृहाण मे॥ ३॥
ॐ गौरीपतये नमः।

श्रीलक्ष्मण नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः।
याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं संगृहाण मे॥ ४॥
ॐ श्रीसपत्नीकाय लक्ष्मणाय नमः।

श्रीशत्रुघ्न नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः।
पीठस्य पश्चिमे भागे पूजनं स्वीकुरुष्व मे॥ ५॥
ॐ श्रीसपत्नीकाय शत्रुघ्नाय नमः।

श्रीभरत नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः।
पीठकस्योत्तरे भागे तिष्ठ पूजां गृहाण मे॥ ६॥
ॐ श्रीसपत्नीकाय भरताय नमः।

श्रीहनुमन्नमस्तुभ्यमिहागच्छ कृपानिधे।
पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु प्रभो॥ ७॥

ॐ हनुमते नमः।

अथ प्रधानपूजा च कर्तव्या विधिपूर्वकम्।
पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तु ध्यानं कुर्यात्परस्य च॥ ८ ॥
रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालङ्कृतं
श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितम्।
कारुण्यामृतसागरं प्रियगणैर्भ्रात्रादिभिर्भावितं
वन्दे विष्णुशिवादिसेव्यमनिशं भक्तेष्टसिद्धिप्रदम्॥ ९ ॥
आगच्छ जानकीनाथ जानक्या सह राघव।
गृहाण मम पूजां च वायुपुत्रादिभिर्युतः॥ १० ॥

इत्यावाहनम्

सुवर्णरचितं राम दिव्यास्तरणशोभितम्।
आसनं हि मया दत्तं गृहाण मणिचित्रितम्॥ ११ ॥

इति षोडशोपचारैः पूजयेत्

ॐ अस्य श्रीमन्मानसरामायणश्रीरामचरितस्य श्रीशिवकाकभुशुण्डियाज्ञवल्क्यगोस्वामितुलसीदासा ऋषयः श्रीसीतारामो देवता श्रीरामनाम बीजं भवरोगहरी भक्तिः शक्तिः मम नियन्त्रिताशेषविघ्नतया श्रीसीताराम-प्रीतिपूर्वकसकलमनोरथसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

अथ आचमनम्

श्रीसीतारामाभ्यां नमः। श्रीरामचन्द्राय नमः। श्रीरामभद्राय नमः।

इति मन्त्रत्रितयेन आचमनं कुर्यात्। श्रीयुगलबीजमन्त्रेण प्राणायामं कुर्यात्॥

अथ करन्यासः

जग मंगल गुनग्राम राम के।
दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥

तर्जनीभ्यां नमः ।

राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

मध्यमाभ्यां नमः ।

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

अनामिकाभ्यां नमः ।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इति करन्यास:

अथ हृदयादिन्यासः

जग मंगल गुनग्राम राम के।
दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

हृदयाय नमः ।

राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥

शिरसे स्वाहा।

राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

शिखायै वषट्।

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

कवचाय हुम्।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

नेत्राभ्यां वौषट्।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

अस्त्राय फट्।

इति हृदयादिन्यासः

अथ ध्यानम्

मामवलोकय पंकज लोचन।
कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि।
हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥
जातुधान बरूथ बल भंजन।
मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक।
असरन सरन दीन जन गाहक॥
भुज बल बिपुल भार महि खंडित।
खर दूषन बिराध बध पंडित॥
रावनारि सुखरूप भूपबर।
जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥
सुजस पुरान बिदित निगमागम।
गावत सुर मुनि संत समागम॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन।
सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥
कलि मल मथन नाम ममताहन।
तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥

इति ध्यानम्

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

किष्किन्धाकाण्ड

(दोहा २९)

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा।
जियँ संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक।
पठइअ किमि सब ही कर नायक॥ १ ॥
कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥ २ ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥ ३ ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा।
लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥ ४ ॥

सहित सहाय रावनहि मारी।
आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही।
उचित सिखावनु दीजहु मोही॥ ५ ॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई।
सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना।
कौतुक लागि संग कपि सेना॥ ६ ॥

[छन्द]

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

[दोहा ३० (क)]

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

[सोरठा ३० (ख)]

नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

पञ्चम सोपान

सुन्दरकाण्ड

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥ १॥

शान्त, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणोंसे परे), निष्पाप, मोक्षरूप परमशान्ति देनेवाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजीसे निरन्तर सेवित, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, सर्वव्यापक, देवताओंमें सबसे बड़े, मायासे मनुष्यरूपमें दीखनेवाले, समस्त पापोंको हरनेवाले, करुणाकी खान, रघुकुलमें श्रेष्ठ तथा राजाओंके शिरोमणि, राम कहलानेवाले जगदीश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥ २॥

हे रघुनाथजी! मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबके

अन्तरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं) कि मेरे हृदयमें दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिये और मेरे मनको काम आदि दोषोंसे रहित कीजिये॥ २॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥ ३॥

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु)-के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [-को ध्वंस करने]-के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई॥ १॥

जाम्बवान्‌के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान्‌जीके हृदयको बहुत ही भाये। [वे बोले—] हे भाई! तुमलोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तबतक मेरी राह देखना॥ १॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी।
होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा।
चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥ २॥

जबतक मैं सीताजीको देखकर [लौट] न आऊँ। काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदयमें श्रीरघुनाथजीको धारण करके हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥ २॥

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर।
कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी।
तरकेउ पवनतनय बल भारी॥ ३॥

समुद्रके तीरपर एक सुन्दर पर्वत था। हनुमान्‌जी खेलसे ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्रीरघुवीरका स्मरण करके अत्यन्त बलवान् हनुमान्‌जी उसपरसे बड़े वेगसे उछले॥ ३॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भाँति चलेउ हनुमाना॥ ४॥

जिस पर्वतपर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले (जिसपरसे वे उछले), वह तुरंत ही पातालमें धँस गया। जैसे श्रीरघुनाथजीका अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्‌जी चले॥ ४॥

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥ ५॥

समुद्रने उन्हें श्रीरघुनाथजीका दूत समझकर मैनाक पर्वतसे कहा कि हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करनेवाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)॥ ५॥

[दोहा १]

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

हनुमान्‌जीने उसे हाथसे छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा—भाई! श्रीरामचन्द्रजीका काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?॥ १॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा।
जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता।
पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥ १॥

देवताओंने पवनपुत्र हनुमान्‌जीको जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धिको जाननेके लिये (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पोंकी माताको भेजा, उसने आकर हनुमान्‌जीसे यह बात कही—॥ १॥

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा।
सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥ २॥

आज देवताओंने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जीने कहा—श्रीरामजीका कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजीकी खबर प्रभुको सुना दूँ,॥ २॥

तब तव बदन पैठिहउँ आई।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना।
ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥ ३॥

तब मैं आकर तुम्हारे मुँहमें घुस जाऊँगा [तुम मुझे खा लेना]। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे। जब किसी भी उपायसे उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्‌जीने कहा—तो फिर मुझे खा न ले॥ ३॥

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥ ४॥

उसने योजनभर (चार कोसमें) मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जीने अपने शरीरको उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजनका मुख किया। हनुमान्‌जी तुरंत ही बत्तीस योजनके हो गये॥ ४॥

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥ ५॥

जैसे-जैसे सुरसा मुखका विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्‌जी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोसका) मुख किया। तब हनुमान्‌जीने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया॥ ५॥

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा।
मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा।
बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥ ६॥

और वे उसके मुखमें घुसकर [तुरंत] फिर बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। [उसने कहा—] मैंने तुम्हारे बुद्धि-बलका भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओंने मुझे भेजा था॥ ६॥

[दोहा २]

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

तुम श्रीरामचन्द्रजीका सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धिके भण्डार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गयी, तब हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥ २॥

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥ १॥

समुद्रमें एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंको पकड़ लेती थी। आकाशमें जो जीव-जन्तु उड़ा करते थे, वह जलमें उनकी परछाईं देखकर,॥ १॥

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा।
तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥ २॥

उस परछाईंको पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे [और जलमें गिर पड़ते थे]। इस प्रकार वह सदा आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जीसे

भी किया। हनुमान्‌जीने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया॥ २॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा।
गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥ ३॥

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर श्रीहनुमान्‌जी उसको मारकर समुद्रके पार गये। वहाँ जाकर उन्होंने वनकी शोभा देखी। मधु (पुष्परस)-के लोभसे भौंरे गुञ्जार कर रहे थे॥ ३॥

नाना तरु फल फूल सुहाए।
खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें।
ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥ ४॥

अनेकों प्रकारके वृक्ष फल-फूलसे शोभित हैं। पक्षी और पशुओंके समूहको देखकर तो वे मनमें [बहुत ही] प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्‌जी भय त्यागकर उसपर दौड़कर जा चढ़े॥ ४॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई।
प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी।
कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥ ५॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! इसमें वानर हनुमान्‌की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभुका प्रताप है, जो कालको भी खा जाता है। पर्वतपर चढ़कर उन्होंने लङ्का देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता॥ ५॥

अति उतंग जलनिधि चहु पासा।
कनक कोट कर परम प्रकासा॥ ६॥

वह अत्यन्त ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोनेके परकोटे (चहारदीवारी)-का परम प्रकाश हो रहा है॥ ६॥

[छन्द १]

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥

विचित्र मणियोंसे जड़ा हुआ सोनेका परकोटा है, उसके अंदर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं; सुन्दर नगर बहुत प्रकारसे सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरोंके समूह तथा पैदल और रथोंके समूहोंको कौन गिन सकता है? अनेक रूपोंके राक्षसोंके दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती॥ १॥

[छन्द २]

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वोंकी कन्याएँ अपने सौन्दर्यसे मुनियोंके भी मनोंको मोहे लेती हैं। कहीं पर्वतके समान विशाल शरीरवाले बड़े ही बलवान् मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ोंमें बहुत प्रकारसे भिड़ते और एक-दूसरेको ललकारते हैं॥ २॥

[छन्द ३]

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

भयंकर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानीसे) नगरकी चारों दिशाओंमें (सब ओरसे) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरोंको खा रहे हैं। तुलसीदासने इनकी कथा इसीलिये कुछ थोड़ी-सी कही है कि ये निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीके बाणरूपी तीर्थमें शरीरोंको त्यागकर परमगति पावेंगे॥ ३॥

[दोहा ३]

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥

नगरके बहुसंख्यक रखवालोंको देखकर हनुमान्‌जीने मनमें विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रातके समय नगरमें प्रवेश करूँ॥ ३॥

मसक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी।
सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥ १॥

हनुमान्‌जी मच्छरके समान (छोटा-सा) रूप धारण कर नररूपसे लीला करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके लङ्काको चले। [लङ्काके द्वारपर] लङ्किनी नामकी एक राक्षसी रहती थी। वह बोली—मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे)

कहाँ चला जा रहा है?॥ १॥

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा।
मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥ २॥

हे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना? जहाँतक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जीने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खूनकी उलटी करती हुई पृथ्वीपर लुढ़क पड़ी॥ २॥

पुनि संभारि उठी सो लंका।
जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा।
चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥ ३॥

वह लङ्किनी फिर अपनेको सँभालकर उठी और डरके मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। [वह बोली—] रावणको जब ब्रह्माजीने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसोंके विनाशकी यह पहचान बता दी थी कि—॥ ३॥

बिकल होसि तैं कपि के मारे।
तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता॥ ४॥

जब तू बंदरके मारनेसे व्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसोंका संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं श्रीरामचन्द्रजीके दूत (आप)-को नेत्रोंसे देख पायी॥ ४॥

[दोहा ४]

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय, तो भी वे सब मिलकर [दूसरे पलड़ेपर रखे हुए] उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लव (क्षण)-मात्रके सत्सङ्गसे होता है॥ ४॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥ १॥

अयोध्यापुरीके राजा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रखे हुए नगरमें प्रवेश करके सब काम कीजिये। उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गायके खुरके बराबर हो जाता है, अग्निमें शीतलता आ जाती है॥ १॥

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥ २॥

और हे गरुड़जी! सुमेरु पर्वत उसके लिये रजके समान हो जाता है, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान्‌जीने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान्‌का स्मरण करके नगरमें प्रवेश किया॥ २॥

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥

गयउ दसानन मंदिर माहीं।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥ ३॥

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महलकी खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावणके महलमें गये। वह अत्यन्त विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥ ३॥

सयन किएँ देखा कपि तेही।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥ ४॥

हनुमान्‌जीने उस (रावण)-को शयन किये देखा; परन्तु महलमें जानकीजी नहीं दिखायी दीं। फिर एक सुन्दर महल दिखायी दिया। वहाँ (उसमें) भगवान्‌का एक अलग मन्दिर बना हुआ था॥ ४॥

[दोहा ५]

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥

वह महल श्रीरामजीके आयुध (धनुष-बाण)-के चिह्नोंसे अङ्कित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसीके वृक्ष-समूहोंको देखकर कपिराज श्रीहनुमान्‌जी हर्षित हुए॥ ५॥

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा।
तेहीं समय बिभीषनु जागा॥ १॥

लङ्का तो राक्षसोंके समूहका निवासस्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष)-का निवास कहाँ? हनुमान्‌जी मनमें इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषणजी जागे॥ १॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी।
साधु ते होइ न कारज हानी॥ २॥

उन्होंने (विभीषणने) रामनामका स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान्‌जीने उन्हें सज्जन जाना और हृदयमें हर्षित हुए। [हनुमान्‌जीने विचार किया कि] इनसे हठ करके (अपनी ओरसे ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधुसे कार्यकी हानि नहीं होती [प्रत्युत लाभ ही होता है]॥ २॥

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।
सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई।
बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥ ३॥

ब्राह्मणका रूप धरकर हनुमान्‌जीने उन्हें वचन सुनाये (पुकारा)। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये। प्रणाम करके कुशल पूछी [और कहा कि] हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिये॥ ३॥

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई।
मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी।
आयहु मोहि करन बड़भागी॥ ४॥

क्या आप हरिभक्तोंमेंसे कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदयमें अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनोंसे प्रेम करनेवाले स्वयं श्रीरामजी ही हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने (घर बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आये हैं?॥ ४॥

[दोहा ६]

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

तब हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीकी सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनोंके शरीर पुलकित हो गये और श्रीरामजीके गुणसमूहोंका स्मरण करके दोनोंके मन [प्रेम और आनन्दमें] मग्न हो गये॥ ६॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥ १॥

[विभीषणजीने कहा—] हे पवनपुत्र! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ, जैसे दाँतोंके बीचमें बेचारी जीभ। हे तात! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुलके नाथ श्रीरामचन्द्रजी क्या कभी मुझपर कृपा करेंगे?॥ १॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥ २॥

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होनेसे साधन तो कुछ बनता नहीं और न मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें प्रेम ही है। परन्तु हे

हनुमान्! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामजीकी मुझपर कृपा है; क्योंकि हरिकी कृपाके बिना संत नहीं मिलते॥ २॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा।
तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥ ३॥

जब श्रीरघुवीरने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओरसे) दर्शन दिये हैं। [हनुमान्‌जीने कहा—] हे विभीषणजी! सुनिये, प्रभुकी यही रीति है कि वे सेवकपर सदा ही प्रेम किया करते हैं॥ ३॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा।
तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥ ४॥

भला कहिये, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ? [जातिका] चञ्चल वानर हूँ और सब प्रकारसे नीच हूँ। प्रातःकाल जो हमलोगों (बंदरों)-का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले॥ ४॥

[दोहा ७]

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

हे सखा! सुनिये, मैं ऐसा अधम हूँ; पर श्रीरामचन्द्रजीने तो मुझपर भी कृपा ही की है। भगवान्‌के गुणोंका स्मरण करके हनुमान्‌जीके दोनों नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया॥ ७॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी।
फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥

एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा।
पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥ १॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्रीरघुनाथजी)-को भुलाकर [विषयोंके पीछे] भटकते फिरते हैं, वे दुःखी क्यों न हों? इस प्रकार श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की॥ १॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही।
जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता।
देखी चहउँ जानकी माता॥ २॥

फिर विभीषणजीने, श्रीजानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लङ्कामें) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जीने कहा—हे भाई! सुनो, मैं जानकी माताको देखना चाहता हूँ॥ २॥

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ।
बन असोक सीता रह जहवाँ॥ ३॥

विभीषणजीने [माताके दर्शनकी] सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनायीं। तब हनुमान्‌जी विदा लेकर चले। फिर वही (पहलेका मसक-सरीखा) रूप धरकर वहाँ गये, जहाँ अशोकवनमें (वनके जिस भागमें) सीताजी रहती थीं॥ ३॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा।
बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥

कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥ ४॥

सीताजीको देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें मनहीमें प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही-बैठे रात्रिके चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है, सिरपर जटाओंकी एक वेणी (लट) है। हृदयमें श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका जाप (स्मरण) करती रहती हैं॥ ४॥

[दोहा ८]

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

श्रीजानकीजी नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये हुए हैं (नीचेकी ओर देख रही हैं) और मन श्रीरामजीके चरणकमलोंमें लीन है। जानकीजीको दीन (दुःखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बहुत ही दुःखी हुए॥ ८॥

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।
करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा।
संग नारि बहु किएँ बनावा॥ १॥

हनुमान्‌जी वृक्षके पत्तोंमें छिप रहे और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ)? उसी समय बहुत-सी स्त्रियोंको साथ लिये सज-धजकर रावण वहाँ आया॥ १॥

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा।
साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी।
मंदोदरी आदि सब रानी॥ २॥

उस दुष्टने सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावणने कहा—हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो। मन्दोदरी आदि सब रानियोंको—॥ २॥

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा।
एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही।
सुमिरि अवधपति परम सनेही॥ ३॥

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके जानकीजी तिनकेकी आड़ (परदा) करके कहने लगीं—॥ ३॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी।
खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥ ४॥

हे दशमुख! सुन, जुगनूके प्रकाशसे कभी कमलिनी खिल सकती है? जानकीजी फिर कहती हैं—तू [अपने लिये भी] ऐसा ही मनमें समझ ले। रे दुष्ट! तुझे श्रीरघुवीरके बाणकी खबर नहीं है॥ ४॥

सठ सूनें हरि आनेहि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥ ५॥

रे पापी! तू मुझे सूनेमें हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?॥ ५॥

[दोहा ९]

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥

अपनेको जुगनूके समान और रामचन्द्रजीको सूर्यके समान सुनकर और सीताजीके कठोर वचनोंको सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्सेमें आकर बोला— ॥ ९ ॥

सीता तैं मम कृत अपमाना।
कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होति न त जीवन हानी॥ १ ॥

सीता! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाणसे काट डालूँगा। नहीं तो [अब भी] जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा!॥ १ ॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥ २ ॥

[सीताजीने कहा—] हे दशग्रीव! प्रभुकी भुजा जो श्याम कमलकी मालाके समान सुन्दर और हाथीकी सूँड़के समान [पुष्ट तथा विशाल] है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठमें पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है॥ २॥

चंद्रहास हरु मम परितापं।
रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा।
कह सीता हरु मम दुख भारा॥ ३ ॥

सीताजी कहती हैं—हे चन्द्रहास (तलवार)! श्रीरघुनाथजीके विरहकी अग्निसे उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलनको तू हर ले। हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धारा ठंढी और तेज है), तू मेरे दुःखके बोझको हर ले॥ ३॥

सुनत बचन पुनि मारन धावा।
मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई।
सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥ ४॥

सीताजीके ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानवकी पुत्री मन्दोदरीने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावणने सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा कि जाकर सीताको बहुत प्रकारसे भय दिखलाओ॥ ४॥

मास दिवस महुँ कहा न माना।
तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥ ५॥

यदि महीनेभरमें यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा॥ ५॥

[दोहा १०]

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥

[यों कहकर] रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियोंके समूह बहुत-से बुरे रूप धरकर सीताजीको भय दिखलाने लगे॥ १०॥

त्रिजटा नाम राच्छसी एका।
राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना।
सीतहि सेइ करहु हित अपना॥ १॥

उनमें एक त्रिजटा नामकी राक्षसी थी। उसकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान)-में निपुण थी। उसने सबोंको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा—सीताजीकी सेवा करके अपना कल्याण कर लो॥ १॥

सपनें बानर लंका जारी।
जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा।
मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥ २॥

स्वप्नमें [मैंने देखा कि] एक बंदरने लङ्का जला दी। राक्षसोंकी सारी सेना मार डाली गयी। रावण नंगा है और गदहेपर सवार है। उसके सिर मुँड़े हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं॥ २॥

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई।
लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई।
तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥ ३॥

इस प्रकारसे वह दक्षिण (यमपुरीकी) दिशाको जा रहा है और मानो लङ्का विभीषणने पायी है। नगरमें श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई फिर गयी। तब प्रभुने सीताजीको बुला भेजा॥ ३॥

यह सपना मैं कहउँ पुकारी।
होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं।
जनकसुता के चरनन्हि परीं॥ ४॥

मैं पुकारकर (निश्चयके साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गयीं और जानकीजीके चरणोंपर गिर पड़ीं॥ ४॥

[दोहा ११]

जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गयीं। सीताजी मनमें सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जानेपर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा॥ ११॥

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी।
मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई।
दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥ १॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटासे बोलीं—हे माता! तू मेरी विपत्तिकी संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता॥ १॥

आनि काठ रचु चिता बनाई।
मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी।
सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥ २॥

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी! तू मेरी प्रीतिको सत्य कर दे। रावणकी शूलके समान दुःख देनेवाली वाणी कानोंसे कौन सुने?॥ २॥

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥ ३॥

सीताजीके वचन सुनकर त्रिजटाने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभुका प्रताप, बल और सुयश सुनाया। [उसने कहा—] हे सुकुमारी! सुनो, रात्रिके समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी॥ ३॥

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥ ४॥

सीताजी [मन-ही-मन] कहने लगीं—[क्या करूँ] विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाशमें अंगारे प्रकट दिखायी दे रहे हैं, पर पृथ्वीपर एक भी तारा नहीं आता॥ ४॥

पावकमय ससि स्त्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥ ५॥

चन्द्रमा अग्निमय है, किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोकवृक्ष! मेरी विनती सुन! मेरा शोक हर ले और अपना [अशोक] नाम सत्य कर॥ ५॥

नूतन किसलय अनल समाना।
देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता।
सो छन कपिहि कलप सम बीता॥ ६ ॥

तेरे नये-नये कोमल पत्ते अग्निके समान हैं। अग्नि दे, विरह-रोगका अन्त मत कर (अर्थात् विरह-रोगको बढ़ाकर सीमातक न पहुँचा)। सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्जीको कल्पके समान बीता॥ ६ ॥

[सोरठा १२]

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥

तब हनुमान्जीने हृदयमें विचारकर [सीताजीके सामने] अँगूठी डाल दी, मानो अशोकने अंगारा दे दिया। [यह समझकर] सीताजीने हर्षित होकर उठकर उसे हाथमें ले लिया॥ १२ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर।
राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी।
हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥ १ ॥

तब उन्होंने राम-नामसे अङ्कित अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठीको पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विषादसे हृदयमें अकुला उठीं॥ १ ॥

जीति को सकइ अजय रघुराई।
माया तें असि रचि नहिं जाई॥

सीता मन बिचार कर नाना।
मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥ २॥

[वे सोचने लगीं—] श्रीरघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और मायासे ऐसी (मायाके उपादानसे सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनायी नहीं जा सकती। सीताजी मनमें अनेक प्रकारके विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले—॥ २॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई।
आदिहु तें सब कथा सुनाई॥ ३॥

वे श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करने लगे, [जिनके] सुनते ही सीताजीका दु:ख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्‌जीने आदिसे लेकर सारी कथा कह सुनायी॥ ३॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई।
कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ।
फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥ ४॥

[सीताजी बोलीं—] जिसने कानोंके लिये अमृतरूप यह सुन्दर कथा कही, वह हे भाई! प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान्‌जी पास चले गये। उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गयीं; उनके मनमें आश्चर्य हुआ॥ ४॥

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी।
दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥ ५॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता जानकी! मैं श्रीरामजीका दूत हूँ। करुणानिधानकी सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। श्रीरामजीने मुझे आपके लिये यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है॥ ५॥

नर बानरहि संग कहु कैसें।
कही कथा भइ संगति जैसें॥ ६॥

[सीताजीने पूछा—] नर और वानरका सङ्ग कहो कैसे हुआ? तब हनुमान्‌जीने जैसे सङ्ग हुआ था, वह सब कथा कही॥ ६॥

[दोहा १३]

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥

हनुमान्‌जीके प्रेमयुक्त वचन सुनकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न हो गया। उन्होंने जान लिया कि यह मन, कर्म और वचनसे कृपासागर श्रीरघुनाथजीका दास है॥ १३॥

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी।
सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।
भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥ १॥

भगवान्‌का जन (सेवक) जानकर अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गयी। नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया और शरीर अत्यन्त

पुलकित हो गया। [सीताजीने कहा—] हे तात हनुमान्! विरहसागरमें डूबती हुई मुझको तुम जहाज हुए॥ १॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी।
अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई।
कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥ २॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित खरके शत्रु सुखधाम प्रभुका कुशल-मङ्गल कहो। श्रीरघुनाथजी तो कोमलहृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान्! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है?॥ २॥

सहज बानि सेवक सुखदायक।
कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता।
होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥ ३॥

सेवकको सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्रीरघुनाथजी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अङ्गोंको देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे?॥ ३॥

बचनु न आव नयन भरे बारी।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता।
बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥ ४॥

[मुँहसे] वचन नहीं निकलता, नेत्रोंमें [विरहके आँसुओंका]

जल भर आया। [बड़े दुःखसे वे बोलीं—] हा नाथ! आपने मुझे बिलकुल ही भुला दिया! सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और विनीत वचन बोले—॥ ४॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता।
तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना।
तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥ ५॥

हे माता! सुन्दर कृपाके धाम प्रभु भाई लक्ष्मणजीके सहित [शरीरसे] कुशल हैं, परन्तु आपके दुःखसे दुःखी हैं। हे माता! मनमें ग्लानि न मानिये (मन छोटा करके दुःख न कीजिये)। श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें आपसे दूना प्रेम है॥ ५॥

[दोहा १४]

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥

हे माता! अब धीरज धरकर श्रीरघुनाथजीका संदेश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेमसे गद्गद हो गये। उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया॥ १४॥

कहेउ राम बियोग तव सीता।
मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू।
कालनिसा सम निसि ससि भानू॥ १॥

[हनुमान्‌जी बोले—] श्रीरामचन्द्रजीने कहा है कि हे सीते! तुम्हारे वियोगमें मेरे लिये सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गये हैं। वृक्षोंके नये-नये कोमल पत्ते मानो अग्निके समान, रात्रि

कालरात्रिके समान, चन्द्रमा सूर्यके समान॥ १॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा।
उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥ २॥

और कमलोंके वन भालोंके वनके समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे, वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) वायु साँपके श्वासके समान (जहरीली और गरम) हो गयी है॥ २॥

कहेहू तें कछु दुख घटि होई।
काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥ ३॥

मनका दुःख कह डालनेसे भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है॥ ३॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही।
मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥ ४॥

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ ले। प्रभुका सन्देश सुनते ही जानकीजी प्रेममें मग्न हो गयीं। उन्हें शरीरकी सुध न रही॥ ४॥

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता।
सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई।
सुनि मम बचन तजहु कदराई॥ ५॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करो। श्रीरघुनाथजीकी प्रभुताको हृदयमें लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो॥ ५॥

[दोहा १५]

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥

राक्षसोंके समूह पतंगोंके समान और श्रीरघुनाथजीके बाण अग्निके समान हैं। हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और राक्षसोंको जला ही समझो॥ १५॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई।
करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी।
तम बरूथ कहँ जातुधान की॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीने यदि खबर पायी होती तो वे विलम्ब न करते। हे जानकीजी! रामबाणरूपी सूर्यके उदय होनेपर राक्षसोंकी सेनारूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है?॥ १॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई।
प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥

कछुक दिवस जननी धरु धीरा।
कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥ २॥

हे माता! मैं आपको अभी यहाँसे लिवा जाऊँ; पर श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ है, मुझे प्रभु (उन)-की आज्ञा नहीं है। [अतः] हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। श्रीरामचन्द्रजी वानरोंसहित यहाँ आवेंगे॥ २॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं।
तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना।
जातुधान अति भट बलवाना॥ ३॥

और राक्षसोंको मारकर आपको ले जायँगे। नारद आदि [ऋषि-मुनि] तीनों लोकोंमें उनका यश गावेंगे। [सीताजीने कहा—] हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हें-नन्हें-से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान् योद्धा हैं॥ ३॥

मोरें हृदय परम संदेहा।
सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयंकर अतिबल बीरा॥ ४॥

अतः मेरे हृदयमें बड़ा भारी सन्देह होता है [कि तुम-जैसे बंदर राक्षसोंको कैसे जीतेंगे!] यह सुनकर हनुमान्जीने अपना शरीर प्रकट किया। सोनेके पर्वत (सुमेरु)-के आकारका (अत्यन्त विशाल) शरीर था, जो युद्धमें शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला, अत्यन्त बलवान् और वीर था॥ ४॥

सीता मन भरोस तब भयऊ।
पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥ ५॥

तब (उसे देखकर) सीताजीके मनमें विश्वास हुआ। हनुमान्‌जीने फिर छोटा रूप धारण कर लिया॥ ५॥

[दोहा १६]

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥

हे माता! सुनो, वानरोंमें बहुत बल-बुद्धि नहीं होती। परन्तु प्रभुके प्रतापसे बहुत छोटा सर्प भी गरुड़को खा सकता है (अत्यन्त निर्बल भी महान् बलवान्‌को मार सकता है)॥ १६॥

मन संतोष सुनत कपि बानी।
भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना।
होहु तात बल सील निधाना॥ १॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे सनी हुई हनुमान्‌जीकी वाणी सुनकर सीताजीके मनमें सन्तोष हुआ। उन्होंने श्रीरामजीके प्रिय जानकर हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शीलके निधान होओ॥ १॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥ २॥

हे पुत्र! तुम अजर (बुढ़ापेसे रहित), अमर और गुणोंके

खजाने होओ। श्रीरघुनाथजी तुमपर बहुत कृपा करें। 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानोंसे सुनते ही हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेममें मग्न हो गये॥ २॥

बार बार नाएसि पद सीसा।
बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।
आसिष तव अमोघ बिख्याता॥ ३॥

हनुमान्‌जीने बार-बार सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है॥ ३॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी।
परम सुभट रजनीचर भारी॥ ४॥

हे माता! सुनो, सुन्दर फलवाले वृक्षोंको देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आयी है। [सीताजीने कहा—] हे बेटा! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वनकी रखवाली करते हैं॥ ४॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं।
जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥ ५॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता! यदि आप मनमें सुख मानें (प्रसन्न होकर आज्ञा दें) तो मुझे उनका भय तो बिलकुल नहीं है॥ ५॥

[दोहा १७]

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥

हनुमान्‌जीको बुद्धि और बलमें निपुण देखकर जानकीजीने कहा—जाओ। हे तात! श्रीरघुनाथजीके चरणोंको हृदयमें धारण करके मीठे फल खाओ॥ १७॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥ १॥

वे सीताजीको सिर नवाकर चले और बागमें घुस गये। फल खाये और वृक्षोंको तोड़ने लगे। वहाँ बहुत-से योद्धा रखवाले थे। उनमेंसे कुछको मार डाला और कुछने जाकर रावणसे पुकार की—॥ १॥

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥ २॥

[और कहा—] हे नाथ! एक बड़ा भारी बंदर आया है। उसने अशोकवाटिका उजाड़ डाली। फल खाये, वृक्षोंको उखाड़ डाला और रखवालोंको मसल-मसलकर जमीनपर डाल दिया॥ २॥

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥ ३॥

यह सुनकर रावणने बहुत-से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्‌जीने गर्जना की। हनुमान्‌जीने सब राक्षसोंको मार डाला, कुछ जो अधमरे थे, चिल्लाते हुए गये॥ ३॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा।
चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥ ४॥

फिर रावणने अक्षयकुमारको भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओंको साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान्‌जीने एक वृक्ष [हाथमें] लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर)-से गर्जना की॥ ४॥

[दोहा १८]

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥

उन्होंने सेनामें कुछको मार डाला और कुछको मसल डाला और कुछको पकड़-पकड़कर धूलमें मिला दिया। कुछने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बंदर बहुत ही बलवान् है॥ १८॥

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना।
पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही।
देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥ १॥

पुत्रका वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने [अपने जेठे पुत्र] बलवान् मेघनादको भेजा। (उससे कहा कि—) हे पुत्र! मारना नहीं; उसे बाँध लाना। उस बंदरको देखा जाय कि कहाँका है॥ १॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा।
बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥

कपि देखा दारुन भट आवा।
कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥ २॥

इन्द्रको जीतनेवाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाईका मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमान्‌जीने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े॥ २॥

अति बिसाल तरु एक उपारा।
बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा।
गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥ ३॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और [उसके प्रहारसे] लंकेश्वर रावणके पुत्र मेघनादको बिना रथका कर दिया (रथको तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीरसे मसलने लगे॥ ३॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा।
भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई।
ताहि एक छन मुरुछा आई॥ ४॥

उन सबको मारकर फिर मेघनादसे लड़ने लगे। [लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे] मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गये हों। हनुमान्‌जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्षपर जा चढ़े। उसको क्षणभरके लिये मूर्च्छा आ गयी॥ ४॥

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया।
जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥ ५॥

फिर उठकर उसने बहुत माया रची; परन्तु पवनके पुत्र उससे जीते नहीं जाते॥ ५॥

[दोहा १९]

ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥

अन्तमें उसने ब्रह्मास्त्रका सन्धान (प्रयोग) किया, तब हनुमान्‌जीने मनमें विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्रको नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जायगी॥ १९॥

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा।
परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ।
नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥ १॥

उसने हनुमान्‌जीको ब्रह्मबाण मारा, [जिसके लगते ही वे वृक्षसे नीचे गिर पड़े] परन्तु गिरते समय भी उन्होंने बहुत-सी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्च्छित हो गये हैं, तब वह उनको नागपाशसे बाँधकर ले गया॥ १॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी।
भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा।
प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥ २॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण)-के बन्धनको काट

डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धनमें आ सकता है? किन्तु प्रभुके कार्यके लिये हनुमान्‌जीने स्वयं अपनेको बँधा लिया॥ २॥

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए।
कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई।
कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥ ३॥

बंदरका बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुकके लिये (तमाशा देखनेके लिये) सब सभामें आये। हनुमान्‌जीने जाकर रावणकी सभा देखी। उसकी अत्यन्त प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती॥ ३॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता।
भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका।
जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥ ४॥

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रताके साथ भयभीत हुए सब रावणकी भौं ताक रहे हैं। (उसका रुख देख रहे हैं।) उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान्‌जीके मनमें जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशङ्क खड़े रहे, जैसे सर्पोंके समूहमें गरुड़ निःशङ्क (निर्भय) रहते हैं॥ ४॥

[दोहा २०]

कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥

हनुमान्‌जीको देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा।

फिर पुत्र-वधका स्मरण किया तो उसके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया॥ २०॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा।
केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही।
देखउँ अति असंक सठ तोही॥ १॥

लङ्कापति रावणने कहा—रे वानर! तू कौन है? किसके बलपर तूने वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानोंसे नहीं सुना? रे शठ! मैं तुझे अत्यन्त निःशङ्क देख रहा हूँ॥ १॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा।
कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया।
पाइ जासु बल बिरचति माया॥ २॥

तूने किस अपराधसे राक्षसोंको मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जानेका भय नहीं है? [हनुमान्‌जीने कहा—] हे रावण! सुन; जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके समूहोंकी रचना करती है;॥ २॥

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन।
अंडकोस समेत गिरि कानन॥ ३॥

जिनके बलसे हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः)

सृष्टिका सृजन, पालन और संहार करते हैं; जिनके बलसे सहस्त्रमुख (फणों)-वाले शेषजी पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्माण्डको सिरपर धारण करते हैं;॥ ३॥

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता।
तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा।
तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥ ४॥

जो देवताओंकी रक्षाके लिये नाना प्रकारकी देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे-जैसे मूर्खोंको शिक्षा देनेवाले हैं; जिन्होंने शिवजीके कठोर धनुषको तोड़ डाला और उसीके साथ राजाओंके समूहका गर्व चूर्ण कर दिया॥ ४॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली।
बधे सकल अतुलित बलसाली॥ ५॥

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालिको मार डाला, जो सब-के-सब अतुलनीय बलवान् थे;॥ ५॥

[दोहा २१]

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

जिनके लेशमात्र बलसे तुमने समस्त चराचर जगत्को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नीको तुम [चोरीसे] हर लाये हो, मैं उन्हींका दूत हूँ॥ २१॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई।
सहसबाहु सन परी लराई॥

समर बालि सन करि जसु पावा।
सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥ १ ॥

मैं तुम्हारी प्रभुताको खूब जानता हूँ, सहस्रबाहुसे तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालिसे युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था। हनुमान्‌जीके [मार्मिक] वचन सुनकर रावणने हँसकर बात टाल दी॥ १॥

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा।
कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी।
मारहिं मोहि कुमारग गामी॥ २ ॥

हे [राक्षसोंके] स्वामी! मुझे भूख लगी थी, (इसलिये) मैंने फल खाये और वानर-स्वभावके कारण वृक्ष तोड़े। हे (निशाचरोंके) मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्गपर चलनेवाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे॥ २॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।
तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा।
कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥ ३ ॥

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उसपर तुम्हारे पुत्रने मुझको बाँध लिया। [किन्तु] मुझे अपने बाँधे जानेकी कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभुका कार्य किया चाहता हूँ॥ ३॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन।
सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी।
भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥ ४॥

हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुलका विचार करके देखो और भ्रमको छोड़कर भक्तभयहारी भगवान्‌को भजो॥ ४॥

जाकें डर अति काल डेराई।
जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै।
मोरे कहें जानकी दीजै॥ ५॥

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचरको खा जाता है, वह काल भी जिनके डरसे अत्यन्त डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहनेसे जानकीजीको दे दो॥ ५॥

[दोहा २२]

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥

खरके शत्रु श्रीरघुनाथजी शरणागतोंके रक्षक और दयाके समुद्र हैं। शरण जानेपर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरणमें रख लेंगे॥ २२॥

राम चरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥ १॥

तुम श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारण करो और लङ्काका अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजीका यश निर्मल

चन्द्रमाके समान है। उस चन्द्रमामें तुम कलंक न बनो॥ १॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा।
देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी।
सब भूषन भूषित बर नारी॥ २॥

रामनामके बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोहको छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओंके शत्रु! सब गहनोंसे सजी हुई सुन्दरी स्त्री भी कपड़ोंके बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती॥ २॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई।
जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं।
बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥ ३॥

रामविमुख पुरुषकी सम्पत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है और उसका पाना न पानेके समान है। जिन नदियोंके मूलमें कोई जलस्रोत नहीं है (अर्थात् जिन्हें केवल बरसातका ही आसरा है) वे वर्षा बीत जानेपर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥ ३॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी।
बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही।
सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥ ४॥

हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुखकी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा

भी श्रीरामजीके साथ द्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते॥ ४॥

[दोहा २३]

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

मोह ही जिसका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देनेवाले, तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और रघुकुलके स्वामी, कृपाके समुद्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो॥ २३॥

जदपि कही कपि अति हित बानी।
भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी।
मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥ १॥

यद्यपि हनुमान्‌जीने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीतिसे सनी हुई बहुत ही हितकी वाणी कही, तो भी वह महान् अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंगसे) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!॥ १॥

मृत्यु निकट आई खल तोही।
लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना।
मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥ २॥

रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गयी है। अधम! मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान्‌जीने कहा—इससे उलटा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आयी है, मेरी नहीं)। यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धिका फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है॥ २॥

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥ ३॥

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया [और बोला—] अरे! इस मूर्खका प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते? सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े। उसी समय मन्त्रियोंके साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे॥ ३॥

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥ ४॥

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावणसे कहा कि दूतको मारना नहीं चाहिये, यह नीतिके विरुद्ध है। हे गोसाईं! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा—भाई! यह सलाह उत्तम है॥ ४॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥ ५॥

यह सुनते ही रावण हँसकर बोला—अच्छा तो, बंदरको अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाय॥ ५॥

[दोहा २४]

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदरकी ममता पूँछपर

होती है। अतः तेलमें कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछमें बाँधकर फिर आग लगा दो॥ २४॥

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि।
तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई।
देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥ १॥

जब बिना पूँछका यह बंदर वहाँ (अपने स्वामीके पास) जायगा, तब यह मूर्ख अपने मालिकको साथ ले आयेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!॥ १॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना।
भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना।
लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥ २॥

यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मनमें मुसकराये [और मन-ही-मन बोले कि] मैं जान गया, सरस्वतीजी [इसे ऐसी बुद्धि देनेमें] सहायक हुई हैं। रावणके वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछमें आग लगानेकी) तैयारी करने लगे॥ २॥

रहा न नगर बसन घृत तेला।
बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी।
मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥ ३॥

[पूँछके लपेटनेमें इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि]

नगरमें कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान्‌जीने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गयी (लंबी हो गयी)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आये। वे हनुमान्‌जीको पैरसे ठोकर मारते हैं और उनकी बहुत हँसी करते हैं॥ ३॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी।
नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता।
भयउ परम लघुरूप तुरंता॥ ४॥

ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जीको नगरमें फिराकर, फिर पूँछमें आग लगा दी। अग्निको जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी तुरंत ही बहुत छोटे रूपमें हो गये॥ ४॥

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं।
भईं सभीत निसाचर नारीं॥ ५॥

बन्धनसे निकलकर वे सोनेकी अटारियोंपर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसोंकी स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं॥ ५॥

[दोहा २५]

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥

उस समय भगवान्‌की प्रेरणासे उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाशसे जा लगे॥ २५॥

देह बिसाल परम हरुआई।
मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला।
झपट लपट बहु कोटि कराला॥ १॥

देह बड़ी विशाल, परन्तु बहुत ही हलकी (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महलसे दूसरे महलपर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गये हैं। आगकी करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं॥ १॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा।
एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई।
बानर रूप धरें सुर कोई॥ २॥

हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसरपर हमें कौन बचावेगा? [चारों ओर] यही पुकार सुनायी पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानरका रूप धरे कोई देवता है!॥ २॥

साधु अवग्या कर फलु ऐसा।
जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥ ३॥

साधुके अपमानका यह फल है कि नगर अनाथके नगरकी तरह जल रहा है। हनुमान्जीने एक ही क्षणमें सारा नगर जला डाला। एक विभीषणका घर नहीं जलाया॥ ३॥

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा।
जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥ ४॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! जिन्होंने अग्निको बनाया, हनुमान्‌जी उन्हींके दूत हैं। इसी कारण वे अग्निसे नहीं जले। हनुमान्‌जीने उलट-पलटकर (एक ओरसे दूसरी ओरतक) सारी लङ्का जला दी। फिर वे समुद्रमें कूद पड़े॥ ४॥

[दोहा २६]

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा-सा रूप धारण कर हनुमान्‌जी श्रीजानकीजीके सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए॥ २६॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा।
जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ॥ १॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिये, जैसे श्रीरघुनाथजीने मुझे दिया था। तब सीताजीने चूड़ामणि उतारकर दी। हनुमान्‌जीने उसको हर्षपूर्वक ले लिया॥ १॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा।
सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥ २॥

[जानकीजीने कहा—] हे तात! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना—हे प्रभु! यद्यपि आप सब प्रकारसे पूर्णकाम हैं (आपको किसी प्रकारकी कामना नहीं है), तथापि

दीनों (दुःखियों)-पर दया करना आपका विरद है [और मैं दीन हूँ] अतः उस विरदको याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकटको दूर कीजिये॥ २॥

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥ ३॥

हे तात! इन्द्रपुत्र जयन्तकी कथा (घटना) सुनाना और प्रभुको उनके बाणका प्रताप समझाना [स्मरण कराना]। यदि महीनेभरमें नाथ न आये तो फिर मुझे जीती न पायेंगे॥ ३॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥ ४॥

हे हनुमान्! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूँ! हे तात! तुम भी अब जानेको कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन और वही रात!॥ ४॥

[दोहा २७]

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥

हनुमान्‌जीने जानकीजीको समझाकर बहुत प्रकारसे धीरज दिया और उनके चरणकमलोंमें सिर नवाकर श्रीरामजीके पास गमन किया॥ २७॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी।
गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा।
सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥ १॥

चलते समय उन्होंने महाध्वनिसे भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वे इस पार आये और उन्होंने वानरोंको किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया॥ १॥

हरषे सब बिलोकि हनुमाना।
नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा।
कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥ २॥

हनुमान्‌जीको देखकर सब हर्षित हो गये और तब वानरोंने अपना नया जन्म समझा। हनुमान्‌जीका मुख प्रसन्न है और शरीरमें तेज विराजमान है, [जिससे उन्होंने समझ लिया कि] ये श्रीरामचन्द्रजीका कार्य कर आये हैं॥ २॥

मिले सकल अति भए सुखारी।
तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा।
पूँछत कहत नवल इतिहासा॥ ३॥

सब हनुमान्‌जीसे मिले और बहुत ही सुखी हुए, जैसे तड़पती हुई मछलीको जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नये-नये इतिहास (वृत्तान्त) पूछते-कहते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ ३॥

तब मधुबन भीतर सब आए।
अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे।
मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥ ४॥

तब सब लोग मधुवनके भीतर आये और अंगदकी सम्मतिसे सबने मधुर फल [या मधु और फल] खाये। जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसोंकी मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे॥ ४॥

[दोहा २८]

जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभुका कार्य कर आये हैं॥ २८॥

जौं न होति सीता सुधि पाई।
मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा।
आइ गए कपि सहित समाजा॥ १॥

यदि सीताजीकी खबर न पायी होती तो क्या वे मधुवनके फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मनमें विचार कर ही रहे थे कि समाजसहित वानर आ गये॥ १॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा।
मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥

पूँछी कुसल कुसल पद देखी।
राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥ २॥

सबने आकर सुग्रीवके चरणोंमें सिर नवाया। कपिराज सुग्रीव सभीसे बड़े प्रेमके साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी, [तब वानरोंने उत्तर दिया—] आपके चरणोंके दर्शनसे सब कुशल है। श्रीरामजीकी कृपासे विशेष कार्य हुआ (कार्यमें विशेष सफलता हुई है)॥ २॥

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना।
राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ।
कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥ ३॥

हे नाथ! हनुमान्‌ने ही सब कार्य किया और सब वानरोंके प्राण बचा लिये। यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जीसे फिर मिले और सब वानरोंसमेत श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ ३॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा।
किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई।
परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥ ४॥

श्रीरामजीने जब वानरोंको कार्य किये हुए आते देखा तब उनके मनमें विशेष हर्ष हुआ। दोनों भाई स्फटिक शिलापर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़े॥ ४॥

[दोहा २९]

प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥

दयाकी राशि श्रीरघुनाथजी सबसे प्रेमसहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी। [वानरोंने कहा—] हे नाथ! आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेसे अब कुशल है॥ २९॥

जामवंत कह सुनु रघुराया।
जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर।
सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥ १॥

जाम्बवान्‌ने कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये। हे नाथ! जिसपर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उसपर प्रसन्न रहते हैं॥ १॥

सोइ बिजई बिनई गुन सागर।
तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू।
जन्म हमार सुफल भा आजू॥ २॥

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणोंका समुद्र बन जाता है। उसीका सुन्दर यश तीनों लोकोंमें प्रकाशित होता है। प्रभुकी कृपासे सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया॥ २॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए।
जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥ ३॥

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान्‌ने जो करनी की, उसका हजार

मुखोंसे भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीके सुन्दर चरित्र (कार्य) श्रीरघुनाथजीको सुनाये॥ ३॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥ ४॥

[वे चरित्र] सुननेपर कृपानिधि श्रीरामचन्द्रजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्‌जीको फिर हृदयसे लगा लिया और कहा—हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणोंकी रक्षा करती हैं?॥ ४॥

[दोहा ३०]

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

(हनुमान्‌जीने कहा—) आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है। नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रहती हैं, यही ताला लगा है; फिर प्राण जायँ तो किस मार्गसे?॥ ३०॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥ १॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि [उतारकर] दी। श्रीरघुनाथजीने उसे लेकर हृदयसे लगा लिया। [हनुमान्‌जीने फिर कहा—] हे नाथ! दोनों नेत्रोंमें जल भरकर जानकीजीने मुझसे कुछ वचन कहे—॥ १॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना।
दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी।
केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥ २॥

छोटे भाईसमेत प्रभुके चरण पकड़ना [और कहना कि] आप दीनबन्धु हैं, शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले हैं और मैं मन, कर्म और वचनसे आपके चरणोंकी अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप)-ने मुझे किस अपराधसे त्याग दिया?॥ २॥

अवगुन एक मोर मैं माना।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा।
निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥ ३॥

[हाँ] एक दोष मैं अपना [अवश्य] मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये। किन्तु हे नाथ! यह तो नेत्रोंका अपराध है जो प्राणोंके निकलनेमें हठपूर्वक बाधा देते हैं॥ ३॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्त्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरैं न पाव देह बिरहागी॥ ४॥

विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है; इस प्रकार [अग्नि और पवनका संयोग होनेसे] यह शरीर क्षणमात्रमें जल सकता है। परन्तु नेत्र अपने हितके लिये (प्रभुका स्वरूप देखकर सुखी होनेके लिये) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरहकी आगसे भी देह जलने नहीं पाती॥ ४॥

सीता कै अति बिपति बिसाला।
बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥ ५॥

सीताजीकी विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है (कहनेसे आपको बड़ा क्लेश होगा)॥ ५॥

[दोहा ३१]

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥

हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्पके समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरंत चलिये और अपनी भुजाओंके बलसे दुष्टोंके दलको जीतकर सीताजीको ले आइये॥ ३१॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना।
भरि आए जल राजिव नयना॥
बचन कायँ मन मम गति जाही।
सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥ १॥

सीताजीका दुःख सुनकर सुखके धाम प्रभुके कमलनेत्रोंमें जल भर आया [और वे बोले—] मन, शरीर और वचनसे जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्नमें भी विपत्ति हो सकती है?॥ १॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की।
रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥ २॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे प्रभो! विपत्ति तो वही (तभी) है जब

आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो! राक्षसोंकी बात ही कितनी है? आप शत्रुको जीतकर जानकीजीको ले आवेंगे॥ २॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥ ३॥

[भगवान् कहने लगे—] हे हनुमान्! सुन; तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदलेमें उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता॥ ३॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥ ४॥

हे पुत्र! सुन; मैंने मनमें [खूब] विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओंके रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्जीको देख रहे हैं। नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है॥ ४॥

[दोहा ३२]

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

प्रभुके वचन सुनकर और उनके [प्रसन्न] मुख तथा [पुलकित] अंगोंको देखकर हनुमान्जी हर्षित हो गये और प्रेममें

विकल होकर 'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े॥ ३२॥

बार बार प्रभु चहइ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥ १॥

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं, परन्तु प्रेममें डूबे हुए हनुमान्‌जीको चरणोंसे उठना सुहाता नहीं। प्रभुका कर-कमल हनुमान्‌जीके सिरपर है। उस स्थितिका स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गये॥ १॥

सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा।
कर गहि परम निकट बैठावा॥ २॥

फिर मनको सावधान करके शङ्करजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे—हनुमान्‌जीको उठाकर प्रभुने हृदयसे लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लिया॥ २॥

कहु कपि रावन पालित लंका।
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना।
बोला बचन बिगत अभिमाना॥ ३॥

हे हनुमान्! बताओ तो, रावणके द्वारा सुरक्षित लङ्का और उसके बड़े बाँके किलेको तुमने किस तरह जलाया? हनुमान्‌जीने प्रभुको प्रसन्न जाना और वे अभिमानरहित वचन बोले— ॥ ३॥

साखामृग कै बड़ि मनुसाई।
साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा।
निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥ ४॥

बंदरका बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोनेका नगर जलाया और राक्षसगणको मारकर अशोकवनको उजाड़ डाला,॥ ४॥

सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥ ५॥

यह सब तो हे श्रीरघुनाथजी! आपहीका प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है॥ ५॥

[दोहा ३३]

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥

हे प्रभु! जिसपर आप प्रसन्न हों, उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभावसे रूई [जो स्वयं बहुत जल्दी जल जानेवाली वस्तु है] बड़वानलको निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् असम्भव भी सम्भव हो सकता है)॥ ३३॥

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी।
एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥ १॥

हे नाथ! मुझे अत्यन्त सुख देनेवाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा

करके दीजिये। हनुमान्‌जीकी अत्यन्त सरल वाणी सुनकर, हे भवानी! तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा॥ १॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना।
ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा।
रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥ २॥

हे उमा! जिसने श्रीरामजीका स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती! यह स्वामी-सेवकका संवाद जिसके हृदयमें आ गया, वही श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति पा गया॥ २॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा।
जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा।
कहा चलैं कर करहु बनावा॥ ३॥

प्रभुके वचन सुनकर वानरगण कहने लगे—कृपालु आनन्दकन्द श्रीरामजीकी जय हो, जय हो, जय हो! तब श्रीरघुनाथजीने कपिराज सुग्रीवको बुलाया और कहा—चलनेकी तैयारी करो॥ ३॥

अब बिलंबु केहि कारन कीजे।
तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी।
नभ तें भवन चले सुर हरषी॥ ४॥

अब विलम्ब किस कारण किया जाय? वानरोंको तुरंत

आज्ञा दो। [भगवान्‌की] यह लीला (रावणवधकी तैयारी) देखकर, बहुत-से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाशसे अपने-अपने लोकको चले॥ ४॥

[दोहा ३४]

कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥

वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही वानरोंको बुलाया, सेनापतियोंके समूह आ गये। वानर-भालुओंके झुंड अनेक रंगोंके हैं और उनमें अतुलनीय बल है॥ ३४॥

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा।
गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना।
चितइ कृपा करि राजिव नैना॥ १॥

वे प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाते हैं। महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं। श्रीरामजीने वानरोंकी सारी सेना देखी। तब कमलनेत्रोंसे कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली॥ १॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा।
भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना।
सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥ २॥

रामकृपाका बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गये। तब श्रीरामजीने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए॥ २॥

जासु सकल मंगलमय कीती।
तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं।
फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥ ३॥

जिनकी कीर्ति सब मङ्गलोंसे पूर्ण है, उनके प्रस्थानके समय शकुन होना, यह नीति है (लीलाकी मर्यादा है)। प्रभुका प्रस्थान जानकीजीने भी जान लिया। उनके बायें अङ्ग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे [कि श्रीरामजी आ रहे हैं]॥ ३॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई।
असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा।
गर्जहिं बानर भालु अपारा॥ ४॥

जानकीजीको जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावणके लिये अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं॥ ४॥

नख आयुध गिरि पादपधारी।
चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं।
डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥ ५॥

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलनेवाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षोंको धारण किये कोई आकाशमार्गसे और कोई पृथ्वीपर चले जा रहे हैं। वे सिंहके समान गर्जना कर रहे हैं। [उनके चलने और गर्जनेसे] दिशाओंके हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे हैं॥ ५॥

[छन्द १]

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे ॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥

दिशाओंके हाथी चिग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चञ्चल हो गये (काँपने लगे) और समुद्र खलबला उठे। गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब-के-सब मनमें हर्षित हुए कि [अब] हमारे दुःख टल गये। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं। 'प्रबलप्रताप कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहोंको गा रहे हैं॥ १॥

[छन्द २]

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेषजी भी सेनाका बोझ नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं और पुनः-पुनः कच्छपकी कठोर पीठको दाँतोंसे पकड़ते हैं। ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतोंको गड़ाकर कच्छपकी पीठपर लकीर-सी खींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर प्रस्थानयात्राको परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथाको सर्पराज शेषजी कच्छपकी पीठपर लिख रहे हों॥ २॥

[दोहा ३५]

एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥

इस प्रकार कृपानिधान श्रीरामजी समुद्रतटपर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे॥ ३५॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका।
जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा।
नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥ १॥

वहाँ (लङ्कामें) जबसे हनुमान्‌जी लङ्काको जलाकर गये, तबसे राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरोंमें सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुलकी रक्षा [-का कोई उपाय] नहीं है॥ १॥

जासु दूत बल बरनि न जाई।
तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी।
मंदोदरी अधिक अकुलानी॥ २॥

जिसके दूतका बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगरमें आनेपर कौन भलाई है (हमलोगोंकी बड़ी बुरी दशा होगी)? दूतियोंसे नगरनिवासियोंके वचन सुनकर मन्दोदरी बहुत ही व्याकुल हो गयी॥ २॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी।
बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू।
मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥ ३॥

वह एकान्तमें हाथ जोड़कर पति (रावण)-के चरणों लगी और नीतिरसमें पगी हुई वाणी बोली—हे प्रियतम! श्रीहरिसे विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहनेको अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदयमें धारण कीजिये॥ ३॥

समुझत जासु दूत कइ करनी।
स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई।
पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥ ४॥

जिनके दूतकी करनीका विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मन्त्रीको बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्रीको भेज दीजिये॥ ४॥

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई।
सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।
हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥ ५॥

सीता आपके कुलरूपी कमलोंके वनको दुःख देनेवाली जाड़ेकी रात्रिके समान आयी है। हे नाथ! सुनिये, सीताको दिये (लौटाये) बिना शम्भु और ब्रह्माके किये भी आपका भला नहीं हो सकता॥ ५॥

[दोहा ३६]

राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥

श्रीरामजीके बाण सर्पोंके समूहके समान हैं और राक्षसोंके

समूह मेढकके समान। जबतक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तबतक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिये॥ ३६॥

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी।
बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा।
मंगल महुँ भय मन अति काचा॥ १॥

मूर्ख और जगत्प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानोंसे उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा [और बोला—] स्त्रियोंका स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मङ्गलमें भी भय करती हो! तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है॥ १॥

जौं आवइ मर्कट कटकाई।
जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा।
तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥ २॥

यदि वानरोंकी सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवननिर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डरसे काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसीकी बात है॥ २॥

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई।
चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता।
भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥ ३॥

रावणने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदयसे लगा लिया और

ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभामें चला गया। मन्दोदरी हृदयमें चिन्ता करने लगी कि पतिपर विधाता प्रतिकूल हो गये॥ ३॥

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई।
सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू।
ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥ ४॥

ज्यों ही वह सभामें जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पायी कि शत्रुकी सारी सेना समुद्रके उस पार आ गयी है। उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि उचित सलाह कहिये [अब क्या करना चाहिये?]। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किये रहिये (इसमें सलाहकी कौन-सी बात है?)॥ ४॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं।
नर बानर केहि लेखे माहीं॥ ५॥

आपने देवताओं और राक्षसोंको जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनतीमें हैं?॥ ५॥

[दोहा ३७]

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु—ये तीन यदि [अप्रसन्नताके] भय या [लाभकी] आशासे [हितकी बात न कहकर] प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती कहने लगते हैं); तो [क्रमशः] राज्य, शरीर और धर्म—इन तीनका शीघ्र ही नाश हो जाता है॥ ३७॥

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई।
अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा।
भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥ १॥

रावणके लिये भी वही सहायता (संयोग) आ बनी है। मन्त्री उसे सुना-सुनाकर (मुँहपर) स्तुति करते हैं। [इसी समय] अवसर जानकर विभीषणजी आये। उन्होंने बड़े भाईके चरणोंमें सिर नवाया॥ १॥

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन।
बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता।
मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥ २॥

फिर वे सिर नवाकर अपने आसनपर बैठ गये और आज्ञा पाकर ये वचन बोले—हे कृपालु! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है तो हे तात! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपके हितकी बात कहता हूँ—॥ २॥

जो आपन चाहै कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥ ३॥

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकारके सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! परस्त्रीके ललाटको

चौथके चन्द्रमाकी तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथके चन्द्रमाको नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्रीका मुख ही न देखे)॥ ३॥

चौदह भुवन एक पति होई।
भूत द्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ।
अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥ ४॥

चौदहों भुवनोंका एक ही स्वामी हो, वह भी जीवोंसे वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है)। जो मनुष्य गुणोंका समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता॥ ४॥

[दोहा ३८]

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥

हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ—ये सब नरकके रास्ते हैं। इन सबको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको भजिये, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं॥ ३८॥

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
ब्यापक अजित अनादि अनंता॥ १॥

हे तात! राम मनुष्योंके ही राजा नहीं हैं। वे समस्त लोकोंके स्वामी और कालके भी काल हैं। वे [सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञानके भण्डार] भगवान् हैं; वे निरामय (विकाररहित), अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं॥ १॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी।
कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता।
बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥ २॥

उन कृपाके समुद्र भगवान्‌ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओंका हित करनेके लिये ही मनुष्य-शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनिये, वे सेवकोंको आनन्द देनेवाले, दुष्टोंके समूहका नाश करनेवाले और वेद तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं॥ २॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा।
प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही।
भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥ ३॥

वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइये। वे श्रीरघुनाथजी शरणागतका दुःख नाश करनेवाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर)-को जानकीजी दे दीजिये और बिना ही कारण स्नेह करनेवाले श्रीरामजीको भजिये॥ ३॥

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा।
बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन।
सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥ ४॥

जिसे सम्पूर्ण जगत्‌से द्रोह करनेका पाप लगा है, शरण जानेपर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापोंका नाश करनेवाला है, वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्यरूपमें प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदयमें यह समझ लीजिये॥ ४॥

[दोहा ३९ (क)]

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥

हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मदको त्यागकर आप कोसलपति श्रीरामजीका भजन कीजिये॥ ३९ (क)॥

[दोहा ३९ (ख)]

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥

मुनि पुलस्त्यजीने अपने शिष्यके हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुन्दर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात प्रभु (आप)-से कह दी॥ ३९ (ख)॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना।
तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन।
सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥ १॥

माल्यवान् नामका एक बहुत ही बुद्धिमान् मन्त्री था। उसने उन (विभीषण)-के वचन सुनकर बहुत सुख माना [और कहा—] हे तात! आपके छोटे भाई नीति-विभूषण (नीतिको भूषणरूपमें धारण करनेवाले अर्थात् नीतिमान्) हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदयमें धारण कर लीजिये॥ १॥

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ।
दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥

माल्यवंत गृह गयउ बहोरी।
कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥ २॥

[रावणने कहा—] ये दोनों मूर्ख शत्रुकी महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है? इन्हें दूर करो न! तब माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे—॥ २॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥ ३॥

हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाममें विपत्ति (दुःख) रहती है॥ ३॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥ ४॥

आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है। इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं। जो राक्षसकुलके लिये कालरात्रि [-के समान] हैं, उन सीतापर आपकी बड़ी प्रीति है॥ ४॥

[दोहा ४०]

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥

हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिये (मुझ बालकके आग्रहको स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिये)। श्रीरामजीको सीताजी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो॥ ४०॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥ १॥

विभीषणने पण्डितों, पुराणों और वेदोंद्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणीसे नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है!॥ १॥

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥ २॥

अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्नसे पल रहा है), पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रुका ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट! बता न, जगत्‌में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओंके बलसे न जीता हो?॥ २॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥ ३॥

मेरे नगरमें रहकर प्रेम करता है तपस्वियोंपर। मूर्ख! उन्हींसे जा मिल और उन्हींको नीति बता। ऐसा कहकर रावणने उन्हें लात मारी। परन्तु छोटे भाई विभीषणने (मारनेपर भी) बार-बार उसके चरण ही पकड़े॥ ३॥

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥ ४॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! संतकी यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करनेपर भी [बुराई करनेवालेकी] भलाई ही करते हैं। [विभीषणजीने कहा—] आप मेरे पिताके समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया; परन्तु हे नाथ! आपका भला श्रीरामजीको भजनेमें ही है॥ ४॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।
सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥ ५॥

[इतना कहकर] विभीषण अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर आकाशमार्गमें गये और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे— ॥ ५॥

[दोहा ४१]

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

श्रीरामजी सत्यसंकल्प एवं [सर्वसमर्थ] प्रभु हैं और [हे रावण!] तुम्हारी सभा कालके वश है। अतः मैं अब श्रीरघुवीरकी शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना॥ ४१॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं।
आयू हीन भए सब तबहीं॥

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी॥ १॥

ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी)। [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! साधुका अपमान तुरंत ही सम्पूर्ण कल्याणकी हानि (नाश) कर देता है॥ १॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं॥ २॥

रावणने जिस क्षण विभीषणको त्यागा, उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य)-से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मनमें अनेकों मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ २॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी॥ ३॥

[वे सोचते जाते थे—] मैं जाकर भगवान्‌के कोमल और लाल वर्णके सुन्दर चरणकमलोंके दर्शन करूँगा, जो सेवकोंको सुख देनेवाले हैं, जिन चरणोंका स्पर्श पाकर ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डकवनको पवित्र करनेवाले हैं॥ ३॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए॥

हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥ ४॥

जिन चरणोंको जानकीजीने हृदयमें धारण कर रखा है, जो कपटमृगके साथ पृथ्वीपर [उसे पकड़नेको] दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हींको आज मैं देखूँगा॥ ४॥

[दोहा ४२]

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

जिन चरणोंकी पादुकाओंमें भरतजीने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणोंको अभी जाकर इन नेत्रोंसे देखूँगा॥ ४२॥

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।
आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा।
जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥ १॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्रके इस पार (जिधर श्रीरामचन्द्रजीकी सेना थी) आ गये। वानरोंने विभीषणको आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रुका कोई खास दूत है॥ १॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए।
समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
आवा मिलन दसानन भाई॥ २॥

उन्हें [पहरेपर] ठहराकर वे सुग्रीवके पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाये। सुग्रीवने [श्रीरामजीके पास जाकर] कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये, रावणका भाई [आपसे] मिलने आया है॥ २॥

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा।
कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया।
कामरूप केहि कारन आया॥ ३॥

प्रभु श्रीरामजीने कहा—हे मित्र! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)? वानरराज सुग्रीवने कहा—हे महाराज! सुनिये, राक्षसोंकी माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला (छली) न जाने किस कारण आया है॥ ३॥

भेद हमार लेन सठ आवा।
राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी।
मम पन सरनागत भयहारी॥ ४॥

[जान पड़ता है] यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है। इसलिये मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रखा जाय। [श्रीरामजीने कहा—] हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु मेरा प्रण तो है शरणागतके भयको हर लेना!॥ ४॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना।
सरनागत बच्छल भगवाना॥ ५॥

प्रभुके वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए [और मन-ही-

मन कहने लगे कि] भगवान् कैसे शरणागतवत्सल (शरणमें आये हुएपर पिताकी भाँति प्रेम करनेवाले) हैं॥ ५॥

[दोहा ४३]

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

[श्रीरामजी फिर बोले—] जो मनुष्य अपने अहितका अनुमान करके शरणमें आये हुएका त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं; उन्हें देखनेमें भी हानि है (पाप लगता है)॥ ४३॥

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥ १॥

जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्या लगी हो, शरणमें आनेपर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई।
मोरें सनमुख आव कि सोई॥ २॥

पापीका यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह (रावणका भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदयका होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था?॥ २॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

भेद लेन पठवा दससीसा।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥ ३॥

जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावणने भेद लेनेको भेजा है, तब भी हे सुग्रीव! अपनेको कुछ भी भय या हानि नहीं है॥ ३॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते।
लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं।
रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥ ४॥

क्योंकि हे सखे! जगत्‌में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभरमें उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण आया है तो मैं उसे प्राणोंकी तरह रखूँगा॥ ४॥

[दोहा ४४]

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥

कृपाके धाम श्रीरामजीने हँसकर कहा—दोनों ही स्थितियोंमें उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान्‌सहित सुग्रीवजी 'कृपालु श्रीरामकी जय हो' कहते हुए चले॥ ४४॥

सादर तेहि आगें करि बानर।
चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता।
नयनानंद दान के दाता॥ १॥

विभीषणजीको आदरसहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले, जहाँ करुणाकी खान श्रीरघुनाथजी थे। नेत्रोंको आनन्दका दान देनेवाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयोंको विभीषणजीने दूरहीसे देखा॥ १॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी।
रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन।
स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥ २॥

फिर शोभाके धाम श्रीरामजीको देखकर वे पलक [मारना] रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गये। भगवान्‌की विशाल भुजाएँ हैं, लाल कमलके समान नेत्र हैं और शरणागतके भयका नाश करनेवाला साँवला शरीर है॥ २॥

सिंघ कंध आयत उर सोहा।
आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता।
मन धरि धीर कही मृदु बाता॥ ३॥

सिंहके-से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवोंके मनको मोहित करनेवाला मुख है। भगवान्‌के स्वरूपको देखकर विभीषणजीके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। फिर मनमें धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे॥ ३॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता।
निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥

सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहि तम पर नेहा॥ ४॥

हे नाथ! मैं दशमुख रावणका भाई हूँ। हे देवताओंके रक्षक! मेरा जन्म राक्षसकुलमें हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभावसे ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लूको अन्धकारपर सहज स्नेह होता है॥ ४॥

[दोहा ४५]

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

मैं कानोंसे आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण)-के भयका नाश करनेवाले हैं। हे दुःखियोंके दुःख दूर करनेवाले और शरणागतको सुख देनेवाले श्रीरघुवीर! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ४५॥

अस कहि करत दंडवत देखा।
तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा।
भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥ १॥

प्रभुने उन्हें ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो वे अत्यन्त हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषणजीके दीन वचन सुननेपर प्रभुके मनको बहुत ही भाये। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उनको हृदयसे लगा लिया॥ १॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी।
बोले बचन भगत भयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥ २॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्रीरामजी भक्तोंके भयको हरनेवाले वचन बोले—हे लंकेश! परिवारसहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगहपर है॥ २॥

खल मंडली बसहु दिनु राती।
सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती।
अति नय निपुन न भाव अनीती॥ ३॥

दिन-रात दुष्टोंकी मण्डलीमें बसते हो। [ऐसी दशामें] हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती॥ ३॥

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया।
जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥ ४॥

हे तात! नरकमें रहना वरं अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्टका संग [कभी] न दे। [विभीषणजीने कहा—] हे रघुनाथजी! अब आपके चरणोंका दर्शन कर कुशलसे हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझपर दया की है॥ ४॥

[दोहा ४६]

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥

तबतक जीवकी कुशल नहीं और न स्वप्नमें भी उसके मनको शान्ति है, जबतक वह शोकके घर काम (विषय-कामना)-को छोड़कर श्रीरामजीको नहीं भजता॥ ४६॥

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा।
धरें चाप सायक कटि भाथा॥ १॥

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभीतक हृदयमें बसते हैं, जबतक कि धनुष-बाण और कमरमें तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदयमें नहीं बसते॥ १॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी।
राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं।
जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥ २॥

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लुओंको सुख देनेवाली है। वह (ममतारूपी रात्रि) तभीतक जीवके मनमें बसती है, जबतक प्रभु (आप)-का प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता॥ २॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे।
देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला।
ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥ ३॥

हे श्रीरामजी! आपके चरणारविन्दके दर्शन कर अब मैं कुशलसे हूँ, मेरे भारी भय मिट गये। हे कृपालु! आप जिसपर

अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकारके भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते॥ ३॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ।
सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा।
तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥ ४॥

मैं अत्यन्त नीच स्वभावका राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियोंके भी ध्यानमें नहीं आता, उन प्रभुने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदयसे लगा लिया॥ ४॥

[दोहा ४७]

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥

हे कृपा और सुखके पुञ्ज श्रीरामजी! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजीके द्वारा सेवित युगल चरणकमलोंको अपने नेत्रोंसे देखा॥ ४७॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही।
आवै सभय सरन तकि मोही॥ १॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। कोई मनुष्य [सम्पूर्ण] जड-चेतन जगत्‌का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तककर आ जाय॥ १॥

तजि मद मोह कपट छल नाना।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥ २॥

और मद, मोह तथा नाना प्रकारके छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधुके समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—॥ २॥

सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥ ३॥

इन सबके ममत्वरूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष, शोक और भय नहीं है॥ ३॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें।
लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें।
धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥ ४॥

ऐसा सज्जन मेरे हृदयमें कैसे बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें धन बसा करता है। तुम-सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसीके निहोरेसे (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता॥ ४॥

[दोहा ४८]

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥

जो सगुण (साकार) भगवान्‌के उपासक हैं, दूसरेके हितमें लगे रहते हैं, नीति और नियमोंमें दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणोंके समान हैं॥ ४८॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें।
तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा।
सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥ १॥

हे लङ्कापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय हो। श्रीरामजीके वचन सुनकर सब वानरोंके समूह कहने लगे—कृपाके समूह श्रीरामजीकी जय हो!॥ १॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी।
नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा।
हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥ २॥

प्रभुकी वाणी सुनते हैं और उसे कानोंके लिये अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकड़ते हैं। अपार प्रेम है, हृदयमें समाता नहीं है॥ २॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी।
प्रनतपाल उर अंतरजामी॥

उर कछु प्रथम बासना रही।
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥ ३॥

[विभीषणजीने कहा—] हे देव! हे चराचर जगत्‌के स्वामी! हे शरणागतके रक्षक! हे सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले! सुनिये, मेरे हृदयमें पहले कुछ वासना थी, वह प्रभुके चरणोंकी प्रीतिरूपी नदीमें बह गयी॥ ३॥

अब कृपाल निज भगति पावनी।
देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा।
मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥ ४॥

अब तो हे कृपालु! शिवजीके मनको सदैव प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये। 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्रीरामजीने तुरंत ही समुद्रका जल माँगा॥ ४॥

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं।
मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥ ५॥

[और कहा—] हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत्‌में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता)। ऐसा कहकर श्रीरामजीने उनको राजतिलक कर दिया। आकाशसे पुष्पोंकी अपार वृष्टि हुई॥ ५॥

[दोहा ४९ (क)]

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥

श्रीरामजीने रावणके क्रोधरूपी अग्निमें, जो अपनी (विभीषणकी) श्वास (वचन) रूपी पवनसे प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए विभीषणको बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दिया॥ ४९ (क)॥

[दोहा ४९ (ख)]

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

शिवजीने जो सम्पत्ति रावणको दसों सिरोंकी बलि देनेपर दी थी, वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीने विभीषणको बहुत सकुचते हुए दी॥ ४९ (ख)॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना।
ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा।
प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥ १॥

ऐसे परम कृपालु प्रभुको छोड़कर जो मनुष्य दूसरेको भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछके पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषणको श्रीरामजीने अपना लिया। प्रभुका स्वभाव वानरकुलके मनको [बहुत] भाया॥ १॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी।
सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक।
कारन मनुज दनुज कुल घालक॥ २॥

फिर सब कुछ जाननेवाले, सबके हृदयमें बसनेवाले, सर्वरूप (सब रूपोंमें प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारणसे (भक्तोंपर कृपा करनेके लिये) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसोंके कुलका नाश

करनेवाले श्रीरामजी नीतिकी रक्षा करनेवाले वचन बोले— ॥ २ ॥

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥ ३ ॥

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लङ्कापति विभीषण! सुनो, इस गहरे समुद्रको किस प्रकार पार किया जाय? अनेक जातिके मगर, साँप और मछलियोंसे भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करनेमें सब प्रकारसे कठिन है॥ ३ ॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥ ४ ॥

विभीषणजीने कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रोंको सोखनेवाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गयी है (उचित यह होगा) कि [पहले] जाकर समुद्रसे प्रार्थना की जाय॥ ४ ॥

[दोहा ५०]

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥

हे प्रभु! समुद्र आपके कुलमें बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरोंकी सारी सेना बिना ही परिश्रमके समुद्रके पार उतर जायगी॥ ५० ॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई।
करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा।
राम बचन सुनि अति दुख पावा॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाय, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मणजीके मनको अच्छी नहीं लगी। श्रीरामजीके वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया॥ १ ॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा।
सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥ २ ॥

[लक्ष्मणजीने कहा—] हे नाथ! दैवका कौन भरोसा! मनमें क्रोध कीजिये (ले आइये) और समुद्रको सुखा डालिये। यह दैव तो कायरके मनका एक आधार (तसल्ली देनेका उपाय) है। आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं॥ २ ॥

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा।
ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई।
सिंधु समीप गए रघुराई॥ ३ ॥

यह सुनकर श्रीरघुवीर हँसकर बोले—ऐसे ही करेंगे, मनमें धीरज रखो। ऐसा कहकर छोटे भाईको समझाकर प्रभु श्रीरघुनाथजी समुद्रके समीप गये॥ ३ ॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई।
बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए।
पाछें रावन दूत पठाए॥ ४॥

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारेपर कुश बिछाकर बैठ गये। इधर ज्यों ही विभीषणजी प्रभुके पास आये थे, त्यों ही रावणने उनके पीछे दूत भेजे थे॥ ४॥

[दोहा ५१]

सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥

कपटसे वानरका शरीर धारणकर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वे अपने हृदयमें प्रभुके गुणोंकी और शरणागतपर उनके स्नेहकी सराहना करने लगे॥ ५१॥

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ।
अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने।
सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥ १॥

फिर वे प्रकटरूपमें भी अत्यन्त प्रेमके साथ श्रीरामजीके स्वभावकी बड़ाई करने लगे, उन्हें दुराव (कपट वेष) भूल गया! तब वानरोंने जाना कि ये शत्रुके दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीवके पास ले आये॥ १॥

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर।
अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥

सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए।
बाँधि कटक चहु पास फिराए॥ २॥

सुग्रीवने कहा—सब वानरो! सुनो, राक्षसोंके अङ्ग-भङ्ग करके भेज दो। सुग्रीवके वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतोंको बाँधकर उन्होंने सेनाके चारों ओर घुमाया॥ २॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे।
दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना।
तेहि कोसलाधीस कै आना॥ ३॥

वानर उन्हें बहुत तरहसे मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरोंने उन्हें नहीं छोड़ा। [तब दूतोंने पुकारकर कहा—] जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोसलाधीश श्रीरामजीकी सौगंध है॥ ३॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए।
दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती।
लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥ ४॥

यह सुनकर लक्ष्मणजीने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसोंको तुरंत ही छुड़ा दिया। [और उनसे कहा—] रावणके हाथमें यह चिट्ठी देना [और कहना—] हे कुलघातक! लक्ष्मणके शब्दों (सँदेसे)-को बाँचो॥ ४॥

[दोहा ५२]

कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥

फिर उस मूर्खसे जबानी यह मेरा उदार (कृपासे भरा हुआ) सन्देश कहना कि सीताजीको देकर उनसे (श्रीरामजीसे) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया [समझो]॥ ५२॥

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥ १॥

लक्ष्मणजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर, श्रीरामजीके गुणोंकी कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिये। श्रीरामजीका यश कहते हुए वे लङ्कामें आये और उन्होंने रावणके चरणोंमें सिर नवाये॥ १॥

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥ २॥

दशमुख रावणने हँसकर बात पूछी—अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषणका समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यन्त निकट आ गयी है॥ २॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥ ३॥

मूर्खने राज्य करते हुए लङ्काको त्याग दिया। अभागा अब जौका कीड़ा (घुन) बनेगा (जौके साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर-वानरोंके साथ वह भी मारा जायगा); फिर भालु और वानरोंकी सेनाका हाल कह, जो कठिन कालकी प्रेरणासे यहाँ चली आयी है॥ ३॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा।
भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी।
जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥ ४॥

और जिनके जीवनका रक्षक कोमल चित्तवाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात् उनके और राक्षसोंके बीचमें यदि समुद्र न होता तो अबतक राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते)। फिर उन तपस्वियोंकी बात बता, जिनके हृदयमें मेरा बड़ा डर है॥ ४॥

[दोहा ५३]

की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर॥

उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानोंसे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये? शत्रुसेनाका तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का-सा) हो रहा है॥ ५३॥

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें।
मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा।
जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥ १॥

[दूतने कहा—] हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये (मेरी बातपर विश्वास कीजिये)। जब आपका छोटा भाई श्रीरामजीसे जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्रीरामजीने उसको राजतिलक कर दिया॥ १॥

रावन दूत हमहि सुनि काना।
कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे।
राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥ २॥

हम रावणके दूत हैं, यह कानोंसे सुनकर वानरोंने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिये, यहाँतक कि वे हमारे कान-नाक काटने लगे। श्रीरामजीकी शपथ दिलानेपर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा॥ २॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई।
बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी।
बिकटानन बिसाल भयकारी॥ ३॥

हे नाथ! आपने श्रीरामजीकी सेना पूछी; सो वह तो सौ करोड़ मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगोंके भालु और वानरोंकी सेना है, जो भयंकर मुखवाले, विशाल शरीरवाले और भयानक हैं॥ ३॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा।
सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला।
अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥ ४॥

जिसने नगरको जलाया और आपके पुत्र अक्षयकुमारको

मारा, उसका बल तो सब वानरोंमें थोड़ा है। असंख्य नामोंवाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं। उनमें असंख्य हाथियोंका बल है और वे बड़े ही विशाल हैं॥ ४॥

[दोहा ५४]

द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान्—ये सभी बलकी राशि हैं॥ ५४॥

ए कपि सब सुग्रीव समाना।
इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं।
तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥ १ ॥

ये सब वानर बलमें सुग्रीवके समान हैं और इनके-जैसे [एक-दो नहीं] करोड़ों हैं, उन बहुत-सोंको गिन ही कौन सकता है? श्रीरामजीकी कृपासे उनमें अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकोंको तृणके समान [तुच्छ] समझते हैं॥ १॥

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर।
पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं।
जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥ २ ॥

हे दशग्रीव! मैंने कानोंसे ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरोंके सेनापति हैं। हे नाथ! उस सेनामें ऐसा कोई वानर नहीं है, जो आपको रणमें न जीत सके॥ २॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा।
आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला।
पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥ ३॥

सब-के-सब अत्यन्त क्रोधसे हाथ मीजते हैं। पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों और साँपोंसहित समुद्रको सोख लेंगे। नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतोंसे उसे भरकर पूर (पाट) देंगे॥ ३॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा।
ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका।
मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥ ४॥

और रावणको मसलकर धूलमें मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं; इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लङ्काको निगल ही जाना चाहते हैं॥ ४॥

[दोहा ५५]

सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं फिर उनके सिरपर प्रभु (सर्वेश्वर) श्रीरामजी हैं। हे रावण! वे संग्राममें करोड़ों कालोंको जीत सकते हैं॥ ५५॥

राम तेज बल बुधि बिपुलाई।
सेष सहस सत सकहिं न गाई॥

सक सर एक सोषि सत सागर।
तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धिकी अधिकताको लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाणसे सैकड़ों समुद्रोंको सोख सकते हैं, परन्तु नीतिनिपुण श्रीरामजीने [नीतिकी रक्षाके लिये] आपके भाईसे उपाय पूछा॥ १॥

तासु बचन सुनि सागर पाहीं।
मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा।
जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥ २॥

उनके (आपके भाईके) वचन सुनकर वे (श्रीरामजी) समुद्रसे राह माँग रहे हैं, उनके मनमें कृपा भरी है [इसलिये वे उसे सोखते नहीं]। दूतके ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा [और बोला—] जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरोंको सहायक बनाया है॥ २॥

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई।
सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई।
रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥ ३॥

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषणके वचनको प्रमाण करके उन्होंने समुद्रसे मचलना (बालहठ) ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है! बस, मैंने शत्रु (राम)-के बल और बुद्धिकी थाह पा ली॥ ३॥

सचिव सभीत बिभीषन जाकें।
बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥

सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी।
समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥ ४॥

जिसके विभीषण-जैसा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत्‌में विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ ? दुष्ट रावणके वचन सुनकर दूतको क्रोध बढ़ आया। उसने मौका समझकर पत्रिका निकाली॥ ४॥

रामानुज दीन्ही यह पाती।
नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन।
सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥ ५॥

[और कहा—] श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे बचवाकर छाती ठंडी कीजिये। रावणने हँसकर उसे बायें हाथसे लिया और मन्त्रीको बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा॥ ५॥

[दोहा ५६ (क)]

बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥

[पत्रिकामें लिखा था—] अरे मूर्ख! केवल बातोंसे ही मनको रिझाकर अपने कुलको नष्ट-भ्रष्ट न कर! श्रीरामजीसे विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेशकी शरण जानेपर भी नहीं बचेगा॥ ५६ (क)॥

[दोहा ५६ (ख)]

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषणकी भाँति

प्रभुके चरण-कमलोंका भ्रमर बन जा। अथवा रे दुष्ट! श्रीरामजीके बाणरूपी अग्निमें परिवारसहित पतिंगा हो जा (दोनोंमेंसे जो अच्छा लगे सो कर)॥ ५६ (ख)॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई।
कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा।
लघु तापस कर बाग बिलासा॥ १॥

पत्रिका सुनते ही रावण मनमें भयभीत हो गया, परन्तु मुखसे (ऊपरसे) मुसकराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा—जैसे कोई पृथ्वीपर पड़ा हुआ हाथसे आकाशको पकड़नेकी चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है)॥ १॥

कह सुक नाथ सत्य सब बानी।
समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा।
नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥ २॥

शुक (दूत)-ने कहा—हे नाथ! अभिमानी स्वभावको छोड़कर [इस पत्रमें लिखी] सब बातोंको सत्य समझिये। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिये। हे नाथ! श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये॥ २॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।
जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही।
उर अपराध न एकउ धरिही॥ ३॥

यद्यपि श्रीरघुवीर समस्त लोकोंके स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आपपर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदयमें नहीं रखेंगे॥ ३॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे।
एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही।
चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥ ४॥

जानकीजी श्रीरघुनाथजीको दे दीजिये। हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिये। जब उस (दूत)-ने जानकीजीको देनेके लिये कहा, तब दुष्ट रावणने उसको लात मारी॥ ४॥

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ।
कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई।
राम कृपाँ आपनि गति पाई॥ ५॥

वह भी [विभीषणकी भाँति] चरणोंमें सिर नवाकर वहीं चला, जहाँ कृपासागर श्रीरघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनायी और श्रीरामजीकी कृपासे अपनी गति (मुनिका स्वरूप) पायी॥ ५॥

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी।
राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा।
मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥ ६॥

(शिवजी कहते हैं—) हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषिके शापसे राक्षस हो गया था। बार-बार श्रीरामजीके चरणोंकी वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रमको चला गया॥ ६॥

[दोहा ५७]

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥

इधर तीन दिन बीत गये, किन्तु जड समुद्र विनय नहीं मानता। तब श्रीरामजी क्रोधसहित बोले—बिना भयके प्रीति नहीं होती!॥ ५७॥

लछिमन बान सरासन आनू।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपन सन सुंदर नीती॥ १॥

हे लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाणसे समुद्रको सोख डालूँ। मूर्खसे विनय, कुटिलके साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूससे सुन्दर नीति (उदारताका उपदेश),॥ १॥

ममता रत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा।
ऊसर बीज बएँ फल जथा॥ २॥

ममतामें फँसे हुए मनुष्यसे ज्ञानकी कथा, अत्यन्त लोभीसे

वैराग्यका वर्णन, क्रोधीसे शम (शान्ति)-की बात और कामीसे भगवान्‌की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसरमें बीज बोनेसे होता है (अर्थात् ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)॥ २॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा।
यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला।
उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥ ३॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मणजीके मनको बहुत अच्छा लगा। प्रभुने भयानक [अग्नि] बाण सन्धान किया, जिससे समुद्रके हृदयके अंदर अग्निकी ज्वाला उठी॥ ३॥

मकर उरग झष गन अकुलाने।
जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना।
बिप्र रूप आयउ तजि माना॥ ४॥

मगर, साँप तथा मछलियोंके समूह व्याकुल हो गये। जब समुद्रने जीवोंको जलते जाना, तब सोनेके थालमें अनेक मणियों (रत्नों)-को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मणके रूपमें आया॥ ४॥

[दोहा ५८]

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी! सुनिये, चाहे

कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटनेपर ही फलता है। नीच विनयसे नहीं मानता, वह डाँटनेपर ही झुकता है (रास्तेपर आता है)॥ ५८॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे।
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी।
इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥ १॥

समुद्रने भयभीत होकर प्रभुके चरण पकड़कर कहा—हे नाथ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिये। हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबकी करनी स्वभावसे ही जड है॥ १॥

तव प्रेरित मायाँ उपजाए।
सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई।
सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥ २॥

आपकी प्रेरणासे मायाने इन्हें सृष्टिके लिये उत्पन्न किया है, सब ग्रन्थोंने यही गाया है। जिसके लिये स्वामीकी जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकारसे रहनेमें सुख पाता है॥ २॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही।
मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥ ३॥

प्रभुने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दण्ड) दी; किन्तु मर्यादा (जीवोंका स्वभाव) भी आपकी ही बनायी हुई है। ढोल, गँवार,

शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब शिक्षाके अधिकारी हैं॥ ३॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई।
उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई।
करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥ ४॥

प्रभुके प्रतापसे मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जायगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभुकी आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ॥ ४॥

[दोहा ५९]

सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥

समुद्रके अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु श्रीरामजीने मुसकराकर कहा—हे तात! जिस प्रकार वानरोंकी सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ॥ ५९॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई।
लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥ १॥

[समुद्रने कहा—] हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपनमें ऋषिसे आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेनेसे ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रतापसे समुद्रपर तैर जायँगे॥ १॥

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई।
करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ।
जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥ २॥

मैं भी प्रभुकी प्रभुताको हृदयमें धारण कर अपने बलके अनुसार (जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्रको बँधाइये, जिससे तीनों लोकोंमें आपका सुन्दर यश गाया जाय॥ २॥

एहिं सर मम उत्तर तट बासी।
हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा।
तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥ ३॥

इस बाणसे मेरे उत्तर तटपर रहनेवाले पापके राशि दुष्ट मनुष्योंका वध कीजिये। कृपालु और रणधीर श्रीरामजीने समुद्रके मनकी पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात् बाणसे उन दुष्टोंका वध कर दिया)॥ ३॥

देखि राम बल पौरुष भारी।
हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा।
चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥ ४॥

श्रीरामजीका भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टोंका सारा चरित्र प्रभुको कह सुनाया। फिर चरणोंकी वन्दना करके समुद्र चला गया॥ ४॥

[छन्द]

निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

समुद्र अपने घर चला गया, श्रीरघुनाथजीको यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुगके पापोंको हरनेवाला है, इसे तुलसीदासने अपनी बुद्धिके अनुसार गाया है। श्रीरघुनाथजीके गुणसमूह सुखके धाम, सन्देहका नाश करनेवाले और विषादका दमन करनेवाले हैं। अरे मूर्ख मन! तू संसारका सब आशा-भरोसा त्यागकर निरन्तर इन्हें गा और सुन।

[दोहा ६०]

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥

श्रीरघुनाथजीका गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंका देनेवाला है। जो इसे आदरसहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन)-के ही भवसागरको तर जायँगे॥ ६०॥

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पञ्चमः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका

यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

॥ श्रीहनूमते नमः ॥

श्रीहनुमानचालीसा

[दोहा]

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥
बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन-कुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस बिकार॥

[चौपाई]

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर।
जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥
राम दूत अतुलित बल धामा।
अंजनि-पुत्र पवनसुत नामा॥
महाबीर बिक्रम बजरंगी।
कुमति निवार सुमति के संगी॥
कंचन बरन बिराज सुबेसा।
कानन कुंडल कुंचित केसा॥
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै।
काँधे मूँज जनेऊ साजै॥
संकर सुवन केसरीनंदन।
तेज प्रताप महा जग बंदन॥
बिद्यावान गुनी अति चातुर।
राम काज करिबे को आतुर॥

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।
राम लषन सीता मन बसिया॥
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा।
बिकट रूप धरि लंक जरावा॥
भीम रूप धरि असुर सँहारे।
रामचंद्र के काज सँवारे॥
लाय सजीवन लखन जियाये।
श्रीरघुबीर हरषि उर लाये॥
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई।
तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई॥
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं।
अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा।
नारद सारद सहित अहीसा॥
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते।
कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा।
राम मिलाय राज पद दीन्हा॥
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना।
लंकेस्वर भए सब जग जाना॥

जुग सहस्त्र जोजन पर भानू।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं।
जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं॥
दुर्गम काज जगत के जेते।
सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
राम दुआरे तुम रखवारे।
होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥
सब सुख लहै तुम्हारी सरना।
तुम रच्छक काहू को डर ना॥
आपन तेज सम्हारो आपै।
तीनों लोक हाँक तें काँपै॥
भूत पिसाच निकट नहिं आवै।
महाबीर जब नाम सुनावै॥
नासै रोग हरै सब पीरा।
जपत निरंतर हनुमत बीरा॥
संकट तें हनुमान छुड़ावै।
मन क्रम बचन ध्यान जो लावै॥
सब पर राम तपस्वी राजा।
तिन के काज सकल तुम साजा॥
और मनोरथ जो कोइ लावै।
सोइ अमित जीवन फल पावै॥

चारों जुग परताप तुम्हारा।
है परसिद्ध जगत उजियारा॥
साधु संत के तुम रखवारे।
असुर निकंदन राम दुलारे॥
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता।
अस बर दीन जानकी माता॥
राम रसायन तुम्हरे पासा।
सदा रहो रघुपति के दासा॥
तुम्हरे भजन राम को पावै।
जनम जनम के दुख बिसरावै॥
अंत काल रघुबर पुर जाई।
जहाँ जन्म हरि-भक्त कहाई॥
और देवता चित्त न धरई।
हनुमत सेइ सर्ब सुख करई॥
संकट कटै मिटै सब पीरा।
जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥
जै जै जै हनुमान गोसाईं।
कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥
जो सत बार पाठ कर कोई।
छूटहि बंदि महा सुख होई॥

जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा।
होय सिद्धि साखी गौरीसा॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा।
कीजै नाथ हृदय महँ डेरा॥

[दोहा]

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लषन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप॥

॥ इति ॥

संकटमोचन हनुमानाष्टक

मत्तगयन्द छन्द

बाल समय रबि भक्षि लियो तब
तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।
ताहि सों त्रास भयो जग को
यह संकट काहु सों जात न टारो॥
देवन आनि करी बिनती तब
छाँड़ि दियो रबि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ १ ॥
बालि की त्रास कपीस बसै गिरि
जात महाप्रभु पंथ निहारो।

चौंकि महा मुनि साप दियो तब
चाहिय कौन बिचार बिचारो॥
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु
सो तुम दास के सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ २॥
अंगद के सँग लेन गये सिय
खोज कपीस यह बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौ हम सो जु
बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो॥
हेरि थके तट सिंधु सबै तब लाय
सिया-सुधि प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ ३॥
रावन त्रास दई सिय को सब
राक्षसि सों कहि सोक निवारो।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु
जाय महा रजनीचर मारो॥
चाहत सीय असोक सों आगि सु
दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो।

को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ ४॥
बान लग्यो उर लछिमन के तब
प्रान तजे सुत रावन मारो।
लै गृह बैद्य सुषेन समेत
तबै गिरि द्रोन सु बीर उपारो॥
आनि सजीवन हाथ दई तब
लछिमन के तुम प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ ५॥
रावन जुद्ध अजान कियो तब
नाग कि फाँस सबै सिर डारो।
श्रीरघुनाथ समेत सबै दल
मोह भयो यह संकट भारो॥
आनि खगेस तबै हनुमान जु
बंधन काटि सुत्रास निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ ६॥
बंधु समेत जबै अहिरावन
लै रघुनाथ पताल सिधारो।

देबिहिं पूजि भली बिधि सों बलि
देउ सबै मिलि मंत्र बिचारो॥
जाय सहाय भयो तब ही
अहिरावन सैन्य समेत सँहारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ ७॥

काज किये बड़ देवन के तुम
बीर महाप्रभु देखि बिचारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को
जो तुमसों नहिं जात है टारो॥
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु
जो कछु संकट होय हमारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि
संकटमोचन नाम तिहारो॥ ८॥

दो०— लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लँगूर।
बज्र देह दानव दलन, जय जय जय कपि सूर॥

॥ इति संकटमोचन हनुमानाष्टक सम्पूर्ण॥

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की । कीरति कलित ललित सिय पी की ॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । बालमीक बिग्यान बिसारद ॥
सुक सनकादि सेष अरु सारद । बरनि पवनसुत कीरति नीकी ॥ १ ॥
गावत बेद पुरान अष्टदस । छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस ॥
मुनि जन धन संतन को सरबस । सार अंस संमत सबही की ॥ २ ॥
गावत संतत संभु भवानी । अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी ॥
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी । कागभुसुंडि गरुड के ही की ॥ ३ ॥
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी । सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की ॥
दलन रोग भव मूरि अमी की । तात मात सब बिधि तुलसी की ॥ ४ ॥

श्रीहनुमान्‌जीकी आरती

आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्टदलन रघुनाथ कला की ॥ टेक ॥
जाके बल से गिरिवर काँपै । रोग-दोष जाके निकट न झाँपै ॥ १ ॥
अंजनि पुत्र महा बलदाई । संतन के प्रभु सदा सहाई ॥ २ ॥
दे बीरा रघुनाथ पठाये । लंका जारि सीय सुधि लाये ॥ ३ ॥
लंका सो कोट समुद्र सी खाई । जात पवनसुत बार न लाई ॥ ४ ॥
लंका जारि असुर संहारे । सियारामजीके काज सँवारे ॥ ५ ॥
लक्ष्मण मूर्छित पड़े सकारे । आनि सजीवन प्रान उबारे ॥ ६ ॥
पैठि पताल तोरि जम-कारे । अहिरावन की भुजा उखारे ॥ ७ ॥
बायें भुजा असुर दल मारे । दहिने भुजा संतजन तारे ॥ ८ ॥
सुर नर मुनि आरती उतारे । जै जै जै हनुमान उचारे ॥ ९ ॥
कंचन थार कपूर लौ छाई । आरति करत अंजना माई ॥ १० ॥
जो हनुमान (जी) की आरति गावै । बसि बैकुंठ परमपद पावै ॥ ११ ॥

श्रीराम-स्तुति

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद कंजारुणं॥
कंदर्प अगणित अमित छबि, नवनील-नीरद सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-वंश-निकंदनं।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग बिभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय-कंज-निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं॥
मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

सो०— जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

॥ सियावर रामचन्द्रकी जय॥